अनुबन्ध

श्रीमती रूपवती 'किरण'

जब तक ऋण न चुका दूँ,
तब तक ब्रह्मचर्य...

अनुबन्ध

कारागृह का बंदी बनकर, जीवन की गति हुई निराली।
नैतिकता की राह छोड़कर, जीने में मानी खुशहाली।।

जगत शिरोमणि दुनियाँ कहती, निज नयनों में खुद अपराधी।
षड्यन्त्रों में लोभ बसा है, और मची है आपाधापी।।

न्याय नीति और देश धर्म हित, विषयों का परित्याग किया।
नैतिकता के पथ पर चलने, जीवन से 'अनुबन्ध' किया।।

विषय-सूची

क्र.	नाटक	पृष्ठ सं.
1.	अनुबन्ध	5
2.	मृगावती	29
3.	खुला मुक्ति का द्वार	50
4.	अवसान	74
5.	षड्यन्त्र	90

अनुबन्ध

पात्रानुक्रमणिका:

महाराज रामसिंह	– एक छोटी रियासत के नरेश
महारानी कनकश्री	– रामसिंह की रानी
गेंदासिंह	– निर्धन स्वाभिमानी युवक
गुलाब	– गेंदासिंह की नवविवाहिता पत्नी
सुभामा	– गेंदासिंह की बुआ

(सत्या, मंगला, सुमति, मनोरमा इत्यादि नारियाँ)

दृश्य-प्रथम

(गेंदासिंह का विवाह हो चुका है। वधू आगमन पर बधाई स्वरूप गीत हो रहे हैं। महिलाएँ दादरें गा रही हैं। घर छोटा है। कोने में एक पलंग बिछा हुआ है। निकट ही नवपरिणीता गुलाब घूँघट काढ़े सजी सजाई सकुचाई-सी बैठी है। मनोरमा ढोलक बजा रही है। शेष महिलायें गा रही हैं।) गीत समाप्ति पर–

सुमति– बहिन सुभामा! अब मैं जा रही हूँ।

सुभामा– थोड़ी देर और गाओ न सुमति!

सुमति– नहीं बहिन! रात्रि अधिक हो गयी है, सभी जाने की धुन में हैं।

सत्या– ठंड भी बहुत है, आज्ञा दो।

सुभामा– हाँ शीत का प्रकोप तो भयंकर है, जाओ बहिनों! तुम

सब को बहुत-बहुत धन्यवाद ! बिना बुलावा लिए कोई जाना मत बहिन !

(बताशा की टोकरी लेकर सुभामा आ जाती है)

सुभामा- लो मंगला ! बाँटो बुलावा ।

मंगला- तुम बाँटो न जीजी ।

सुभामा- नहीं, तुम बाँटो, मैं तो परेशान हूँ ।

(मंगला सबको बारी-बारी से आँचल में बताशा देती है। चंद बहिनें वधू का घूँघट खोल-खोलकर मुख देख उसके हाथ में चाँदी के सिक्के देती जाती हैं)

सत्या- बहू तो खूबसूरत है जीजी !

सुमति- सुन्दरता के साथ गुणवती भी हुई तो सोने में सुगन्ध आ जायेगी ।

मनोरमा- वाह ! यह भी कोई कहने की बात है। भाभी की सभी प्रशंसा करते हैं। कामकाज में बहुत निपुण हैं वे ।

सत्या - (हँसते हुए) मनो ने भाभी का पक्ष अभी से लेना शुरू कर दिया ।

मनोरमा- पक्ष की क्या बात ? सच कहा है ।

सुमति- ऐसा ही हो । हम सबकी भी यही शुभ कामना है ।

मंगला- जीजी ने पीहर को फिर हरा-भरा कर दिया ।

सुमति - बहुत परिश्रम किया है सुभामा बहिन ने। गेंदा को कोख जाये बालक से अधिक माना ।

सुभामा- मानती क्यों नहीं बहिन ! तीन भाईयों के परिवार में बस एक यही तो कुल का दीपक है। गेंदा है तो मेरा पीहर तो बना है ।

सत्या- तुमने अपना कर्त्तव्य निवाहा । अब गेंदासिंह की बारी है।

सुभामा- मेरा गेंदा भी मुझे बहुत मान सम्मान देता है बहिन ! बिना सम्मति के कोई कार्य नहीं करता ।

(बुलावा लेकर सब चलने लगती हैं)

सुभामा- अच्छा बहिनों ! नमस्कार । आती रहना ।

सुमति- अभी तुम रहोगी ना जीजी !

सुभामा- नहीं, कल चली जाऊँगी ।

सत्या- इतनी जल्दी ।

सुभामा- एक माह होने को आ गया है। तुम्हारे जीजाजी की अस्वस्थता के समाचार आ रहे हैं, जाना ही होगा। वैसे मेरा आना-जाना तो लगा ही रहता है। मनो ! तू समय निकाल कर भाभी के पास आ जाया करना। अकेली घबराएगी ।

मनोरमा- मैं तो आऊँगी ही मौसी ! तुम नहीं कहतीं, तब भी मैं आती ।

सुभामा- चल तूने मुझे निश्चिंत कर दिया ।

(सबका प्रस्थान)

सुभामा- (स्वत: ही) अभी तक गेंदा नहीं आया गुलाब ! उठ, पानी-आनी पीले । जब से बैठी है सिमटी-सी ।

गुलाब- पानी नहीं पीना बुआ जी ! (रुपए देते हुए) ये रुपये रख लें आप ।

सुभामा- ये तुम्हारे रुपए हैं बहू ! तुम ही रखो । मैं नहीं लूँगी, अब इस घर की सार सँभाल तुम्हारे हाथ में है । कुल की मर्यादा रखना बस इतना ही तुमसे कहना है ।

गुलाब- आप निश्चिंत रहें बुआजी ! कोई भी ऐसा कार्य नहीं करूँगी जिससे कुल पर आँच आये । फिर मार्ग दर्शन तो आप का रहेगा ।

सुभामा- मेरा क्या मार्गदर्शन ? यहाँ रहूँगी ही नहीं । तुम स्वयं सयानी हो, तुम्हारे आस-पास सास-ससुर नहीं हैं, इसलिए मुझे विशेष चिंता है ।

गुलाब- सो तो है ही बुआजी ! आप के अतिरिक्त हमारा है ही कौन ?

सुभामा- तेरे आने से मेरा भी पीहर बन गया बहू ! भाई-भावज के निधन से तो इस घर के पट बंद हो चुके थे, तेरे पैर पड़ते ही फिर खुल गये हैं । कभी आई तो बनी-बनाई रसोई तो मिलेगी जीमने को ।

गुलाब- क्यों नहीं बुआ जी, ये तो मेरा कर्त्तव्य है ।

सुभामा- दस वर्ष से सूना घर गेंदा के विवाह से हरा भरा हो गया । तेरा आगमन उसके जीवन को सुखमय बना दे, बस यही मेरी मंगल कामना है

गुलाब- आपका आशीर्वाद ही हमारे जीवन का सहारा होगा बुआजी !

गेंदासिंह- (प्रवेश कर हँसते हुए) कहने से नहीं, चरण छूने से आशीर्वाद मिलता है ।

गुलाब- उठकर बुआ के चरण छूती है ।

सुभामा- तू बैठ बहू ! गेंदा की बात में मत आ, मेरा तो सदैव आशीर्वाद है तुम दोनों को ।

गुलाब- बुआजी ! सेवा करने से मेवा मिलती है ।

गेंदासिंह- बुआजी का ही पुण्य प्रताप है, जो इस घर का अस्तित्व टिका हुआ है । इसे संवारने में पन्द्रह दिन तक रात-दिन परिश्रम किया है ।

सुभामा- यह तो मेरा कर्त्तव्य था बेटा ! अब भाई-भावज की धरोहर गुलाब को सौंपते हैं । मुझे हर्ष हो रहा है । वही मर्यादा का निर्वाह करेगी ।

गुलाब- भगवान मुझे ऐसी शक्ति दे कि भारतीय गृहिणी के उत्तरदायित्व को निभा सकूँ ।

सुभामा- मुझे विश्वास है गुलाब ! गेंदा अब मुझे विदा कर दे । कल मुँह अँधेरे निकल जाऊँ तो संध्या तक पहुँच जाऊँगी ।

गेंदासिंह- इतनी जल्दी बुआ!

गुलाब- कुछ दिन मेरे पास रह ले बुआ!

(आग्रह भरे स्वर में) अभी नहीं जाने दूगीं आपको।

सुभामा- तू जानता है रे! तेरे फूफाजी अपने मन से औषधि नहीं खाना चाहते। बहुयें बेचारी क्या करें? मैं कड़ाई न करूँ तो काम नहीं चलता। औषधि मैं ही नियमित दे पाती हूँ।

गेंदासिंह- (अत्यन्त आग्रह भरे स्वर में) दो-चार दिन और रह लो न बुआ!

सुभामा- अभी मत कह बेटे! अब मेरा मन नहीं लगता।

गेंदासिंह- तो आप क्या अकेली जायेंगी। मैं साथ का पता तो लगा लूँ।

सुभामा- मैंने पता लगा लिया है। धीरज चाचा जा रहे हैं। उनका साथ अच्छा रहेगा। दिन छिपते-छिपते गाँव पहुँच जाऊँगी।

गेंदासिंह- तो आप पहले ही सब निश्चित कर चुकी हैं। अभी तक तो काम में व्यस्त रहीं। अब कुछ दिन आराम से रह लेती किन्तु आपने जाने का ही पक्का कर लिया है। मेरी याद मत भूलना बुआ! सुविधानुसार आती रहना।

सुभामा- (हँसते हुए) पागल! मैं तुझे भुलाऊँगी? ... ही मुझे मत भुलाना, अब तो तेरी बहू मुझे बुलाएगी और तू लेने आएगा, तब आऊँगी।

गेंदासिंह- हाँ! हाँ! मैं ही आऊँगा लेने। माँ कहो तो पिता कहो तो, तुम्हीं सब कुछ हो। तुम्हीं ने मुझे बड़ा किया है। क्या इतना कृतघ्न हो जाऊँगा कि तुम्हें भूल जाऊँ?

सुभामा- कृतघ्नता की कोई बात नहीं है गेंदा! अपने कोख जाये बच्चे पराए हो जाते हैं, तू तो गोद खिलाया भतीजा है।

गेंदासिंह- (रूठते हुए) देख बुआ! मुझसे ऐसा मत कहना। मैं तो तुझे अपनी माँ ही मानता हूँ।

सुभामा- तुझसे नहीं कह रही रे। जगत की रीति ऐसी ही है अब मैं सोऊँगी। तुम लोग भी सोओ। सुब... जल्दी उठना है।

(प्रस्थान)

(गेंदासिंह उठकर किवाड़ लगा लेता है। घूँघट सिमटी गुलाब और अधिक सिमट जाती है)

गेंदासिंह- भला अब घूँघट क्यों? बुआ तो चली गई। यहाँ ... और तुम। (कहते हुए गुलाब का घूँघट उलट देता... गुलाब का सिर खुल जाता है। वह सिर ढक लेती है...

गुलाब- (सिर ढकते हुए) ये क्या?

गेंदासिंह- इतनी जल्दी बुआ!

गुलाब- कुछ दिन मेरे पास रह ले बुआ!

(आग्रह भरे स्वर में) अभी नहीं जाने दूगीं आपको।

सुभामा- तू जानता है रे! तेरे फूफाजी अपने मन से औषधि नहीं खाना चाहते। बहुयें बेचारी क्या करें? मैं कड़ाई न करूँ तो काम नहीं चलता। औषधि मैं ही नियमित दे पाती हूँ।

गेंदासिंह- (अत्यन्त आग्रह भरे स्वर में) दो-चार दिन और रह लो न बुआ!

सुभामा- अभी मत कह बेटे! अब मेरा मन नहीं लगता।

गेंदासिंह- तो आप क्या अकेली जायेंगी। मैं साथ का पता तो लगा लूँ।

सुभामा- मैंने पता लगा लिया है। धीरज चाचा जा रहे हैं। उनका साथ अच्छा रहेगा। दिन छिपते-छिपते गाँव पहुँच जाऊँगी।

गेंदासिंह- तो आप पहले ही सब निश्चित कर चुकी हैं। अभी तक तो काम में व्यस्त रहीं। अब कुछ दिन आराम से रह लेती किन्तु आपने जाने का ही पक्का कर लिया है। मेरी याद मत भूलना बुआ! सुविधानुसार आती रहना।

सुभामा- (हँसते हुए) पागल! मैं तुझे भुलाऊँगी? अरे अब तू ही मुझे मत भुलाना, अब तो तेरी बहू मुझे बुलाएगी और तू लेने आएगा, तब आऊँगी।

गेंदासिंह- हाँ! हाँ! मैं ही आऊँगा लेने। माँ कहो तो पिता कहो तो, तुम्हीं सब कुछ हो। तुम्हीं ने मुझे बड़ा किया है। क्या इतना कृतघ्न हो जाऊँगा कि तुम्हें भूल जाऊँ?

सुभामा- कृतघ्नता की कोई बात नहीं है गेंदा! अपने कोख जाये बच्चे पराए हो जाते हैं, तू तो गोद खिलाया भतीजा है।

गेंदासिंह- (रूठते हुए) देख बुआ! मुझसे ऐसा मत कहना। मैं तो तुझे अपनी माँ ही मानता हूँ।

सुभामा- तुझसे नहीं कह रही रे। जगत की रीति ऐसी ही है। अब मैं सोऊँगी। तुम लोग भी सोओ। सुबह जल्दी उठना है।

(प्रस्थान)

(गेंदासिंह उठकर किवाड़ लगा लेता है। घूँघट में सिमटी गुलाब और अधिक सिमट जाती है)

गेंदासिंह- भला अब घूँघट क्यों? बुआ तो चली गई। यहाँ मैं हूँ और तुम। (कहते हुए गुलाब का घूँघट उलट देता है। गुलाब का सिर खुल जाता है। वह सिर ढक लेती है)

गुलाब- (सिर ढकते हुए) ये क्या?

गेंदासिंह- क्यों? मुझे यह अधिकार नहीं है क्या?

(गुलाब अनुराग में मुस्कान बिखेर देती है)

गेंदासिंह- गुलाब! आज अपनी मधुरात है। पर मैं एक ऐसी उलझन में फँस गया हूँ कि विवाह का हर्ष मना मधुरात का आनन्द न लूट सकेंगे।

गुलाब- (चौंककर) क्यों ऐसी कौनसी विषम समस्या आ गई है कि हर्ष में विषाद की रेखा खिंच गई?

गेंदासिंह- इस समस्या को सुलझाने में मुझे तुम्हारे सहयोग की अत्यन्त आवश्यकता है।

गुलाब- अर्द्धांगिनी सहयोग न देगी तो कौन देगा? बतलायें मैं क्या सेवा कर सकती हूँ?

गेंदासिंह- कदाचित् तुम्हें ज्ञान न होगा कि ये विवाह कैसे हुआ?

गुलाब- अपना अभिप्राय स्पष्ट करें। मैं समझी नहीं। क्या विवाह में भी प्रकार होते हैं? अरे! बारात आई, भाँवर पड़ी और विवाह हो गया?

गेंदासिंह- यह तो बाहरी बातें हैं जो सबकी समान होती हैं पर अन्तर में अन्तर है।

गुलाब- अन्तर में अन्तर! पहेलियाँ-सी न बुझायें। जल्दी से बता दें कैसे हुआ?

गेंदासिंह- तो सुनो, हम दोनों के पिता परस्पर अभिन्न मित्र थे।

उन्होंने अपनी [illegible] मनौती कर ली थी।

गुलाब- (हँसते हुए) जन्म के पूर्व ही?

गेंदासिंह- सौभाग्य से उनकी आकांक्षा पूरी हुई। [illegible] मेरा और दूसरे के घर में तुम्हारा जन्म हो गया। [illegible] के बाद कन्यादान की रस्म भी पूरी कर ली गई।

गुलाब- यह तो बहुत अच्छा हुआ परन्तु मेरा [illegible] कैसे होता?

गेंदासिंह- (व्यथित हृदय से) साथ तो छूट ही गया था पर भाग्य को यह स्वीकार नहीं था।

गुलाब- कौन-सा विघ्न आ पड़ा?

गेंदासिंह- सौभाग्य ने पीठ फेरी और दुर्भाग्य ने आसन जमाया। पाँच वर्ष का छोड़ माँ का निधन हो गया। पन्द्रहवाँ वर्ष पूरा होते-होते पिता परलोक सिधार गये। बुआ ने मुझे सहारा दिया। वैसे तो पाँच वर्ष से ही बुआ के पास रहने लगा था परन्तु कभी-कभी पिता के पास आ जाता था।

गुलाब- फिर तो कठिन दुःख का सामना करना पड़ा होगा।

गेंदासिंह- (व्यथित हो) हाँ! पर बुआ के प्यार ने सारा दुःख हर लिया। जब मैं बड़ा हुआ तो बुआ ने तुम्हारे पिता के पास विवाह का प्रस्ताव भेजा।

गेंदासिंह- क्यों ? मुझे यह अधिकार नहीं है क्या ?
(गुलाब प्रत्युत्तर में मुस्कान बिखेर देती है)

गेंदासिंह- गुलाब ! आज अपनी मधुरात है। पर मैं एक ऐसी उलझन में फँस गया हूँ कि विवाह का हर्ष मना मधुरात का आनन्द न लूट सकेंगे।

गुलाब- (घबराकर) क्यों ऐसी कौनसी विषम समस्या आ गई है कि हर्ष में विषाद की रेखा खिंच गई ?

गेंदासिंह- इस समस्या को सुलझाने में मुझे तुम्हारे सहयोग की अत्यन्त आवश्यकता है।

गुलाब- अर्द्धांगिनी सहयोग न देगी तो कौन देगा ? बतलायें मैं क्या सेवा कर सकती हूँ ?

गेंदासिंह- कदाचित् तुम्हें ज्ञान न होगा कि ये विवाह कैसे हुआ ?

गुलाब- अपना अभिप्राय स्पष्ट करें। मैं समझी नहीं। क्या विवाह में भी प्रकार होते हैं ? अरे ! बारात आई, भाँवर पड़ी और विवाह हो गया ?

गेंदासिंह- यह तो बाहरी बातें हैं जो सबकी समान होती हैं पर अन्तर में अन्तर है।

गुलाब- अन्तर में अन्तर ! पहेलियाँ-सी न बुझायें। जल्दी से बता दें कैसे हुआ ?

गेंदासिंह- तो सुनो, हम दोनों के पिता परस्पर अभिन्न मित्र थे।

उन्होंने अपनी मैत्रीस्वरूप हमारे जन्म के पूर्व ही मंगनी कर ली थी।

गुलाब- (हँसते हुए) जन्म के पूर्व ही ?

गेंदासिंह- सौभाग्य से उनकी आकांक्षा पूरी हुई। एक के घर में मेरा और दूसरे के घर में तुम्हारा जन्म हो गया। जन्मोत्सव के बाद फलदान की रस्म भी पूरी कर ली गई।

गुलाब- यह तो बहुत अच्छा हुआ वरन् मेरा आपका साथ कैसे होता ?

गेंदासिंह- (व्यथित हृदय से) साथ तो छूट ही गया था पर भाग्य को यह स्वीकार नहीं था ।

गुलाब- कौन-सा विघ्न आ पड़ा ?

गेंदासिंह- सौभाग्य ने पीठ फेरी और दुर्भाग्य ने आसन जमाया। पाँच वर्ष का छोड़ माँ का निधन हो गया। पन्द्रहवाँ वर्ष पूरा होते-होते पिता परलोक सिधार गये। बुआ ने मुझे सहारा दिया। वैसे तो पाँच वर्ष से ही बुआ के पास रहने लगा था परन्तु कभी-कभी पिता के पास आ जाता था।

गुलाब- फिर तो कठिन दुःख का सामना करना पड़ा होगा।

गेंदासिंह- (व्यथित हो) हाँ ! पर बुआ के प्यार ने सारा दुख हर लिया। जब मैं बड़ा हुआ तो बुआ ने तुम्हारे पिता के पास विवाह का प्रस्ताव भेजा।

मेरे पिता तो तैयार होंगे ही। उन्हें तो अपार हर्ष हुआ होगा।

गुलाब- कहाँ का हर्ष ? उन्होंने अस्वीकार कर दिया।

गेंदा सिंह- जब सगाई हो गई थी तब अस्वीकार करने का कारण क्या था ?

गुलाब- बड़ा भारी कारण था गुलाब! तुम क्या समझो, मैं माता-पिता विहीन निर्धन युवक था। धन पिता की बीमारी में समाप्त हो गया। बुआ ने इस घर को बचा लिया वरन् पूर्वजों की निशानी भी नष्ट हो जाती।

गेंदासिंह- मेरे पिता ने यह उचित नहीं किया। मेरे भाग्य में जो होना होता वही होता। उन्हें वचन भंग नहीं करना था फिर विवाह कैसे हुआ ?

गुलाब- मुझे व्यथित हो बुआ ने सारी बातें बतलाई। ये मान मर्यादा का प्रश्न बन गया। मेरे पास फूटी कौड़ी नहीं और तुम्हारे पिता ने बीस हजार रुपयों की माँग की। रुपया दो तो कन्या का विवाह तुम्हारे साथ हो सकता है।

गेंदासिंह- छिः कितनी घृणित बात है। धन के सामने वचन का कोई मूल्यांकन नहीं ?

गुलाब- बात तो ठीक है उनकी, कोई भी पिता अपनी कन्या निर्धन के पल्ले क्यों बाँधे ?

गेंदासिंह- पर नए सिरे से सम्बन्ध थोड़े ही हुआ था। मैं तुम्हारी

गुलाब-

वाग्दत्ता पत्नी थी। केवल विवाह का संस्कार ही तो करना था।

गेंदासिंह- ऐसा उन्होंने नहीं, मैंने विचार किया कि मेरी पत्नी का वर कोई अन्य बने, यह मेरे क्षत्रिय धर्म पर कलंक है। बीस हजार देने का मैंने संकल्प किया और जुटाने में लग गया।

गुलाब- इतनी बड़ी राशि आप कैसे जुटा पाए ?

गेंदासिंह- मैंने घर बेचना चाहा तो तीन हजार से अधिक मूल्य नहीं आँका गया। समस्या ज्यों की त्यों बनी रहती और घर भी चला जाता।

गुलाब- घर बेचकर बड़ी भूल हो जाती। खड़े होने को भी कहीं स्थान न रहता।

गेंदासिंह- तब पिता के एक मित्र मोदी चाचा से ऋण माँगा। 'जहाँ चाह वहाँ राह' आशा फलवती हुई, ऋण मिल गया।

गुलाब- (आश्चर्य से आँख फाड़कर) बीस हजार की इतनी बड़ी रकम, पिता की मित्रता के नाम पर दे दी उन्होंने! ऐसे मित्र बिरले ही होते हैं।

गेंदासिंह- (गंभीर स्वर में) पर कठोर अनुबंध है मेरे और उनके बीच।

गुलाब- कैसा अनुबंध ?

गुलाब- मेरे पिता तो तैयार होंगे ही। उन्हें तो अपार हर्ष हुआ होगा।

गेंदा सिंह- कहाँ का हर्ष ? उन्होंने अस्वीकार कर दिया।

गुलाब- जब सगाई हो गई थी तब अस्वीकार करने का कारण क्या था ?

गेंदासिंह- बड़ा भारी कारण था गुलाब ! तुम क्या समझो, मैं माता–पिता विहीन निर्धन युवक था। धन पिता की बीमारी में समाप्त हो गया। बुआ ने इस घर को बचा लिया वरन् पूर्वजों की निशानी भी नष्ट हो जाती।

गुलाब- मेरे पिता ने यह उचित नहीं किया। मेरे भाग्य में जो होना होता वही होता। उन्हें वचन भंग नहीं करना था फिर विवाह कैसे हुआ ?

गेंदासिंह- मुझे व्यथित हो बुआ ने सारी बातें बतलाई। ये मान मर्यादा का प्रश्न बन गया। मेरे पास फूटी कौड़ी नहीं और तुम्हारे पिता ने बीस हजार रुपयों की माँग की। रुपया दो तो कन्या का विवाह तुम्हारे साथ हो सकता है।

गुलाब- छि: कितनी घृणित बात है। धन के सामने वचन का कोई मूल्यांकन नहीं ?

गेंदासिंह- बात तो ठीक है उनकी, कोई भी पिता अपनी कन्या निर्धन के पल्ले क्यों बाँधे ?

गुलाब- पर नए सिरे से सम्बन्ध थोड़े ही हुआ था। मैं तुम्हारी

वाग्दत्ता पत्नी थी। केवल विवाह का संस्कार ही तो करना था।

गेंदासिंह- ऐसा उन्होंने नहीं, मैंने विचार किया कि मेरी पत्नी का वर कोई अन्य बने, यह मेरे क्षत्रिय धर्म पर कलंक है। बीस हजार देने का मैंने संकल्प किया और जुटाने में लग गया।

गुलाब- इतनी बड़ी राशि आप कैसे जुटा पाए ?

गेंदासिंह- मैंने घर बेचना चाहा तो तीन हजार से अधिक मूल्य नहीं आँका गया। समस्या ज्यों की त्यों बनी रहती और घर भी चला जाता।

गुलाब- घर बेचकर बड़ी भूल हो जाती। खड़े होने को भी कहीं स्थान न रहता।

गेंदासिंह- तब पिता के एक मित्र मोदी चाचा से ऋण माँगा। 'जहाँ चाह वहाँ राह' आशा फलवती हुई, ऋण मिल गया।

गुलाब- (आश्चर्य से आँख फाड़कर) बीस हजार की इतनी बड़ी रकम, पिता की मित्रता के नाम पर दे दी उन्होंने ! ऐसे मित्र बिरले ही होते हैं।

गेंदासिंह- (गंभीर स्वर में) पर कठोर अनुबंध है मेरे और उनके बीच।

गुलाब- कैसा अनुबंध ?

गेंदासिंह- क्या करूँ? इसके बिना मैं तुम्हें अपनी अर्द्धांगिनी नहीं बना सकता था।

गुलाब- बतलायें तो वह कौन-सा अनुबंध है? अब तो मैं इस घर की अभिन्न अंग और आप की सहगामिनी हूँ। मुझसे यह अलगाव कैसा?

गेंदासिंह- अलगाव और तुमसे?

गुलाब - फिर संकोच क्यों?

गेंदासिंह- सच बात यह हैं कि मैं तुम्हारे प्रति अपराधी हूँ रानी।

गुलाब - किन्तु मैं आपको अपराधी स्वीकार करूँ तब न! आप निस्संकोच कहें। अब तो हम दोनों को मिलकर समस्या का समाधान खोजना होगा।

गेंदासिंह- तो सुनो गुलाब! साहूकार की शर्त है कि जब तक उसका ऋण न चुका दूँ, तब तक ब्रह्मचर्य से रहूँ। (अत्यन्त उद्विग्न हो) मैं दोषी हूँ गुलाब, मैं दोषी हूँ।

गुलाब- (दृढ़तापूर्वक) कौन कहता है आप दोषी हैं? क्षत्रिय धर्म का उचित रूप से निर्वाह कर आपने अनपेक्षित लगने वाले दोष का प्रक्षालन किया है। मेरा पूर्ण समर्थन है।

गेंदासिंह- धन्य हो गुलाब! धन्य हो (विह्वल हो अंक में भरने को उद्यत है)

गुलाब- (किंचित् कठोर हो पीछे हटते हुए) नहीं, नहीं!

आप यह न भूलें कि हम व्रती हैं। ऋण चुकाने तक इसका अखण्ड रूप से पालन करना होगा।

गेंदासिंह- तुमने मेरी आशा और विश्वास को बल दिया है गुलाब! भय था कि तुम मुझे कोसोगी,अपशब्द कहोगी पर तुम तो साक्षात् देवी हो।

गुलाब- सती सीता का रक्त मेरी धमनियों में प्रवाहित है स्वामी! भारतीय पतिव्रता नारी कुल या धर्म की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती। आप धन प्राप्ति के लिए जो भी कार्य करेंगे, उसमें मेरा भी सहयोग होगा। आपने भविष्य की क्या योजना बनाई है?

गेंदासिंह- मैंने यही विचार किया है कि तुम्हें तुम्हारे पीहर में छोड़कर मैं राजमहल में नौकरी कर लूँ। सुना है वहाँ प्रहरी की आवश्यकता है।

गुलाब- (आवेश में) मैं क्यों पीहर में रहूँ? पिता ने हमारे साथ अन्याय किया है। वहाँ मेरा रहना क्या उचित होगा?

गेंदासिंह- उचित क्या है, इसे छोड़ो गुलाब! अभी हमारी परिस्थिति ऐसी ही है।

गुलाब- परिस्थिति कैसी भी क्यों न हो, स्वाभिमान गिरवी नहीं रखा जा सकता। मैं भी परिश्रमी हूँ, आराम से नहीं रह सकती। मेरे लिए भी वहीं कोई कार्य पूछ लें।

गेंदासिंह- क्या करूँ ? इसके बिना मैं तुम्हें अपनी अर्द्धांगिनी नहीं बना सकता था।

गुलाब- बतलायें तो वह कौन-सा अनुबंध है ? अब तो मैं इस घर की अभिन्न अंग और आप की सहगामिनी हूँ। मुझसे यह अलगाव कैसा ?

गेंदासिंह- अलगाव और तुमसे ?

गुलाब - फिर संकोच क्यों ?

गेंदासिंह- सच बात यह हैं कि मैं तुम्हारे प्रति अपराधी हूँ रानी।

गुलाब - किन्तु मैं आपको अपराधी स्वीकार करूँ तब न! आप निस्संकोच कहें। अब तो हम दोनों को मिलकर समस्या का समाधान खोजना होगा।

गेंदासिंह- तो सुनो गुलाब! साहूकार की शर्त है कि जब तक उसका ऋण न चुका दूँ, तब तक ब्रह्मचर्य से रहूँ। (अत्यन्त उद्विग्न हो) मैं दोषी हूँ गुलाब, मैं दोषी हूँ।

गुलाब- (दृढ़तापूर्वक) कौन कहता है आप दोषी हैं? क्षत्रिय धर्म का उचित रूप से निर्वाह कर आपने अनपेक्षित लगने वाले दोष का प्रक्षालन किया है। मेरा पूर्ण समर्थन है।

गेंदासिंह- धन्य हो गुलाब! धन्य हो (विह्वल हो अंक में भरने को उद्यत है)

गुलाब- (किंचित् कठोर हो पीछे हटते हुए) नहीं, नहीं! आप यह न भूलें कि हम व्रती हैं। ऋण चुकाने तक इसका अखण्ड रूप से पालन करना होगा।

गेंदासिंह- तुमने मेरी आशा और विश्वास को बल दिया है गुलाब! भय था कि तुम मुझे कोसोगी, अपशब्द कहोगी पर तुम तो साक्षात् देवी हो।

गुलाब- सती सीता का रक्त मेरी धमनियों में प्रवाहित है स्वामी! भारतीय पतिव्रता नारी कुल या धर्म की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करती। आप धन प्राप्ति के लिए जो भी कार्य करेंगे, उसमें मेरा भी सहयोग होगा। आपने भविष्य की क्या योजना बनाई है ?

गेंदासिंह- मैंने यही विचार किया है कि तुम्हें तुम्हारे पीहर में छोड़कर मैं राजमहल में नौकरी कर लूँ। सुना है वहाँ प्रहरी की आवश्यकता है।

गुलाब- (आवेश में) मैं क्यों पीहर में रहूँ ? पिता ने हमारे साथ अन्याय किया है। वहाँ मेरा रहना क्या उचित होगा ?

गेंदासिंह- उचित क्या है, इसे छोड़ो गुलाब! अभी हमारी परिस्थिति ऐसी ही है।

गुलाब- परिस्थिति कैसी भी क्यों न हो, स्वाभिमान गिरवी नहीं रखा जा सकता। मैं भी परिश्रमी हूँ, आराम से नहीं रह सकती। मेरे लिए भी वहीं कोई कार्य पूछ लें।

गेंदासिंह- तुम क्यों कुछ करोगी ? कमाने के लिए मैं अकेला ही बहुत हूँ ।

गुलाब- नहीं, मेरी बात मानें आप। यदि प्रहरी का कार्य आपको मिलता है तो राजा साहब से निवेदन कर रात्रि जागरण का कार्य ले लें। मैं भी वहीं आपके साथ रहूँगी। साथ भी रहेगा और व्रत भी पलता रहेगा।

गेंदासिंह- कहीं स्त्रियाँ भी प्रहरी का कार्य करती है।

गुलाब- क्यों नहीं ? और यदि ऐसा न हो तो मैं पुरुष का वेश धारण कर लूँगी।

गेंदासिंह- (हँसते हुए) तुम पुरुष बनोगी।

गुलाब- क्यों नहीं बन सकती ? आप राजा साहब से कहें कि यह मेरा छोटा भाई है। घर में अकेला नहीं रह सकता। राजा को दो सेवक मिल जायेंगे।

गेंदासिंह- पर वेतन दो को थोड़े ही मिलेगा।

गुलाब- न दें, वेतन का प्रश्न नहीं है। हाँ! एक बात और राजा साहब से यह प्रार्थना अवश्य कर लेना कि कार्य दिन का नहीं रात्रि का हो।

गेंदासिंह- सब तुम्हारे मन का ही करेंगे क्या महाराज ?

गुलाब- अवश्य करेंगे, यदि हमारा भाग्य अनुकूल हुआ तो। परीक्षा करने में क्या हानि ?

गेंदासिंह- तुम्हारी बात मान्य है, जैसा कहोगी वैसा ही करूँगा। रात्रि बहुत हो गई है। विवाह की प्रथम रात्रि सभी की प्यार और मनुहारों की सरसता में अनायास बीत जाती है, हम ऐसे अभागे हैं कि हमारी मधुरात समय की कठोर छाया में समस्या को सुलझाने में नीरस बन समाप्त हो गई।

गुलाब- हम अभागे क्यों ? अरे! ऐसे भाग्यवान बिरले ही होंगे। अग्नि का संयोग पाकर भी घृत विकृत न हो, यह क्या छोटी बात है ? प्रियवर! ऐसी विलक्षणता भारतीय जीवन में ही परिलक्षित होती है, अन्यत्र नहीं। हम दोनों जब अभिन्न मित्र बनकर रहेंगे तब उस आनन्द को पाने के लिए देवता भी तरसेंगे।

गेंदासिंह- सचमुच हम भाग्यवान हैं गुलाब! हम दोनों के विचार कितने मेल खाते हैं ? अब हम सो जाएँ। प्रातः बुआजी को जाना है, शीघ्र उठना पड़ेगा।

गुलाब- आप चिंता न करें। मैं सुबह ही कलेवा बनाकर उनके साथ रख दूँगी, मुझे बचपन से अभ्यास है खेत पर जाने के लिए पिता का सारा प्रबंध मैं करती आ रही हूँ। आप निश्चिंत हो कर सोएँ।

गेंदासिंह– तुम क्यों कुछ करोगी ? कमाने के लिए मैं अकेला ही बहुत हूँ ।

गुलाब– नहीं, मेरी बात मानें आप। यदि प्रहरी का कार्य आपको मिलता है तो राजा साहब से निवेदन कर रात्रि जागरण का कार्य ले लें। मैं भी वहीं आपके साथ रहूँगी। साथ भी रहेगा और व्रत भी पलता रहेगा।

गेंदासिंह– कहीं स्त्रियाँ भी प्रहरी का कार्य करती है।

गुलाब– क्यों नहीं ? और यदि ऐसा न हो तो मैं पुरुष का वेश धारण कर लूँगी।

गेंदासिंह– (हँसते हुए) तुम पुरुष बनोगी।

गुलाब– क्यों नहीं बन सकती ? आप राजा साहब से कहें कि यह मेरा छोटा भाई है। घर में अकेला नहीं रह सकता। राजा को दो सेवक मिल जायेंगे।

गेंदासिंह– पर वेतन दो को थोड़े ही मिलेगा।

गुलाब– न दें, वेतन का प्रश्न नहीं है। हाँ ! एक बात और राजा साहब से यह प्रार्थना अवश्य कर लेना कि कार्य दिन का नहीं रात्रि का हो।

गेंदासिंह– सब तुम्हारे मन का ही करेंगे क्या महाराज ?

गुलाब– अवश्य करेंगे, यदि हमारा भाग्य अनुकूल हुआ तो। परीक्षा करने में क्या हानि ?

गेंदासिंह– तुम्हारी बात मान्य है, जैसा कहोगी वैसा ही करूँगा। रात्रि बहुत हो गई है। विवाह की प्रथम रात्रि सभी की प्यार और मनुहारों की सरसता में अनायास बीत जाती है, हम ऐसे अभागे हैं कि हमारी मधुरात समय की कठोर छाया में समस्या को सुलझाने में नीरस बन समाप्त हो गई।

गुलाब– हम अभागे क्यों ? अरे! ऐसे भाग्यवान बिरले ही होंगे। अग्नि का संयोग पाकर भी घृत विकृत न हो, यह क्या छोटी बात है ? प्रियवर! ऐसी विलक्षणता भारतीय जीवन में ही परिलक्षित होती है, अन्यत्र नहीं। हम दोनों जब अभिन्न मित्र बनकर रहेंगे तब उस आनन्द को पाने के लिए देवता भी तरसेंगे।

गेंदासिंह– सचमुच हम भाग्यवान हैं गुलाब! हम दोनों के विचार कितने मेल खाते हैं ? अब हम सो जाएँ। प्रातः बुआजी को जाना है, शीघ्र उठना पड़ेगा।

गुलाब– आप चिंता न करें। मैं सुबह ही कलेवा बनाकर उनके साथ रख दूँगी, मुझे बचपन से अभ्यास है। खेत पर जाने के लिए पिता का सारा प्रबंध मैं ही करती आ रही हूँ। आप निश्चिंत हो कर सोएँ ।

दृश्य-द्वितीय

समय- संध्याकाल

स्थान- राजप्रासाद का कक्ष

(महाराज रामसिंह एवं उनकी पत्नी महारानी कनकश्री- कक्ष में वार्तालाप कर रहे हैं)

रामसिंह- हाँ तो तुम क्या कह रहीं थी महारानी ! उस समय हम बराबर सुन नहीं पाए थे।

कनक श्री- यही कि आपके प्रहरी दोनों पुरुष नहीं हैं।

रामसिंह- क्या कह रही हो ? पुरुष नहीं है तो क्या नारी हैं ?

कनक श्री - हाँ राजन्! उनमें एक नारी है।

रामसिंह- तुम्हें ये शंका कैसे हो गई ?

कनक श्री- शंका निर्मूल नहीं है महाराज ! गेंदासिंह पुरुष है और उसका छोटा भाई गुलाब नारी है।

रामसिंह- तुमने ये निर्णय कैसे ले लिया ?

कनक श्री - स्वर को परखकर। उसमें परस्पर होने वाली बातों में एक नारी का कंठ स्वर प्रतीत होता है।

रामसिंह- यह बताओ कि नारी को पुरुष बनने की क्या आवश्यकता है ?

कनक श्री- कारण बताना मेरी सामर्थ्य के बाहर है परन्तु यह सुनिश्चित है कि गुलाब नारी है। उनकी प्रतिदिन की बातें सुन मेरा अनुमान प्रबल होता जा रहा है।

रामसिंह- क्या तुम सोती नहीं ? उनकी बातें सुना करती हो।

कनकश्री- निश्चित ही मैं चार रातों से सो नहीं पा रही हूँ। परसों नारी स्वर सुनाई पड़ते ही झाँककर देखा तो दोनों भाइयों के अतिरिक्त कोई नहीं दिखा। शंका ने जिज्ञासा का रूप ले लिया। समाधान के अर्थ रोज ही ध्यान से सुन रही हूँ। शंका सत्य है।

रामसिंह- क्या बातें करते हैं वे ?

कनकश्री- वे रात भर बातें करते हैं। आवाज सुनाई पड़ती है, पर बोल स्पष्ट समझ में नही आते।

रामसिंह- वे ऐसा क्यों करेंगे महारानी ! यदि वे पति-पत्नी होते तो रात्रि जागरण की नौकरी ही क्यों करते ?

कनक श्री- और यह कार्य तो उन्होंने स्वेच्छा से ही लिया है। हो सकता है भाई बहिन हों अथवा अवैध प्यार हो।

रामसिंह- दो माह हो गए उन्हें करते, अभी तक कोई भूल पकड़ में नहीं आई।

कनकश्री- हैं तो विश्वस्त सेवक। पर राजन्! कारण जो भी हो मेरा अनुमान अन्यथा नहीं है। न जाने उनकी कौन-सी विवशता है। जानकारी करने में हानि ही क्या है ?

रामसिंह- हानि क्या लाभ ही है। संभव है कोई षड्यंत्र हो। राज्य के शत्रुओं का अभाव नहीं है।

कनक श्री- षड्यंत्र की गन्ध तो नहीं आती राजन्! फिर भी

खोजबीन करना परमावश्यक है। उनके आने का समय भी हो गया है। चाहें तो पूछ लें।

रामसिंह- किसी कार्य में अनावश्यक विलम्ब क्यों? आज अभी पूछ लेंगे।

(गेंदासिंह एवं गुलाब का प्रवेश। दोनों महाराज रामसिंह एवं महारानी कनक श्री को अभिवादन करते हैं)

कनकश्री- ड्यूटी पर आ गए गेंदासिंह!

गेंदासिंह- जी महारानी! आज्ञा?

रामसिंह- तुम्हारी गतिविधि संदिग्ध नहीं हैं तथापि हम जानना चाहते हैं कि तुम कौन हो? और यहाँ क्यों आये हो?

गेंदासिंह- महाराज! मैं गेंदासिंह लालसिंह का पुत्र और कर्णसिंह का प्रपौत्र हूँ।

रामसिंह- (आश्चर्य से) कर्णसिंह राठौर? मेरे पिता महा प्रताप सिंह के समय में वे अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति माने जाते थे।

गेंदासिंह- जी महाराज! वे मेरे दादा थे। दैव का प्रकोप! परिवार में मैं ही एक बालक बचा था। बारह वर्ष की मेरी आयु थी। मातृ-पितृ विहीन देख मुझे बुआ अपने गाँव ले गईं। उन्हीं की छत्र-छाया में अब तक रहा।

रामसिंह- तुम्हारी बुआ कहाँ रहती है?

गेंदासिंह- यहाँ से तेरह कोस दूर गंगापुर में रहती हैं महाराज!

रामसिंह- वहाँ से क्यों चले आये? तुम्हारा कर्तव्य था वहीं रहते।

गेंदासिंह- बड़ा हो गया हूँ महाराज! कब तक उन पर भार बनकर रहता? यह कर्तव्य नहीं अन्याय होता।

कनकश्री- बुआ का स्नेह तो होगा ही।

गेंदासिंह- क्यों नहीं? पीहर के नाम पर मैं ही एक मात्र भतीजा था महारानी! उनके स्नेह ने मुझे कभी माता-पिता का अभाव नहीं खटकने दिया। वे परिश्रमी हैं। गृह कार्य करते हुए उन्होंने मेरे घर की सार-संभालकर उसे सुरक्षित बनाये रखा, जिसमें रहकर मैं अपना सिर छुपा सका हूँ।

रामसिंह- गुलाब कौन है तुम्हारा?

गेंदासिंह- छोटा भाई है महाराज।

रामसिंह- तुम्हारी बुआ क्या इसे नहीं ले गई थी?

गेंदासिंह- ले गई थी महाराज!

रामसिंह- तुम्हारी सब बातें अपने ही विषय में रहीं। गुलाब की तुमने चर्चा भी नहीं की?

गेंदासिंह- (क्षणिक विचार कर) श्रीमान् ने मेरे ही विषय में

खोजबीन करना परमावश्यक है। उनके आने का समय भी हो गया है। चाहें तो पूछ लें ।

रामसिंह- किसी कार्य में अनावश्यक विलम्ब क्यों ? आज अभी पूछ लेंगे।

(गेंदासिंह एवं गुलाव का प्रवेश। दोनों महाराज रामसिंह एवं महारानी कनक श्री को अभिवादन करते हैं)

कनकश्री- ड्यूटी पर आ गए गेंदासिंह !

गेंदासिंह- जी महारानी ! आज्ञा ?

रामसिंह- तुम्हारी गतिविधि संदिग्ध नहीं हैं तथापि हम जानना चाहते हैं कि तुम कौन हो ? और यहाँ क्यों आये हो ?

गेंदासिंह- महाराज ! मैं गेंदासिंह लालसिंह का पुत्र और कर्णसिंह का प्रपौत्र हूँ।

रामसिंह- (आश्चर्य से) कर्णसिंह राठौर ? मेरे पिता महा प्रताप सिंह के समय में वे अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति माने जाते थे।

गेंदासिंह- जी महाराज ! वे मेरे दादा थे। दैव का प्रकोप! परिवार में मैं ही एक बालक बचा था। बारह वर्ष की मेरी आयु थी। मातृ-पितृ विहीन देख मुझे बुआ अपने गाँव ले गईं। उन्हीं की छत्र-छाया में अब तक रहा।

रामसिंह- तुम्हारी बुआ कहाँ रहती हैं ?

गेंदासिंह- यहाँ से तेरह कोस दूर गंगापुर में रहती हैं महाराज !

रामसिंह- वहाँ से क्यों चले आये ? तुम्हारा कर्त्तव्य था वहीं रहते।

गेंदासिंह- बड़ा हो गया हूँ महाराज ! कब तक उन पर भार बनकर रहता ? यह कर्त्तव्य नहीं अन्याय होता।

कनकश्री- बुआ का स्नेह तो होगा ही।

गेंदासिंह- क्यों नहीं ? पीहर के नाम पर मैं ही एक मात्र भतीजा था महारानी ! उनके स्नेह ने मुझे कभी माता-पिता का अभाव नहीं खटकने दिया। वे परिश्रमी हैं। गृह कार्य करते हुए उन्होंने मेरे घर की सार-संभालकर उसे सुरक्षित बनाये रखा, जिसमें रहकर मैं अपना सिर छुपा सका हूँ।

रामसिंह- गुलाव कौन है तुम्हारा ?

गेंदासिंह- छोटा भाई है महाराज।

रामसिंह- तुम्हारी बुआ क्या इसे नहीं ले गई थी ?

गेंदासिंह- ले गई थी महाराज !

रामसिंह- तुम्हारी सब बातें अपने ही विषय में रहीं। गुलाब की तुमने चर्चा भी नहीं की ?

गेंदासिंह- (क्षणिक विचार कर) श्रीमान् ने मेरे ही विषय में

जानकारी चाही थी।

रामसिंह- नहीं यह स्पष्ट झूठ है गेंदासिंह! सच बोलो गुलाब! तुम कौन हो? और कब से गेंदासिंह के साथ हो?

गुलाब- (घबराकर) जी, मैं गुलाब हूँ अन्नदाता।

कनकश्री- (स्नेह पूर्वक) यह तो हमें विदित है। महाराज यह जानना चाहते हैं कि तुम गेंदासिंह के कौन हो और कब से साथ रहते हो? घबराओ नहीं, सच-सच बतला दो। (गुलाब रुआँसी हो जाती है।)

गेंदासिंह- महाराज! हम दोनों दो माह से आपकी सेवा में हैं और आपके प्रति निष्ठावान हैं फिर भी यदि कोई अपराध अनजाने हो गया हो तो हम क्षमा चाहते हैं।

रामसिंह- ऐसी कोई बात नहीं हैं पर कोई रहस्य अवश्य है जो तुम छिपाते चले जा रहे हो।

कनकश्री- और छिपाना ही तुम्हारा महान अपराध है।

गेंदासिंह- परन्तु इससे सेवा के कार्य में कोई व्यवधान नहीं आया। मैं भगवान की साक्षीपूर्वक कहता हूँ कि हमारी स्वामी भक्ति अक्षुण्ण है। कभी भी किसी प्रकार का अंतर नहीं आया एवं प्रण करता हूँ कि भविष्य में भी कभी नहीं आयेगा।

रामसिंह- हमें तुमसे कोई शिकायत नहीं हैं किन्तु यह तो तुम स्वीकार कर रहे हो कि कुछ रहस्य अवश्य हैं।

कनकश्री- हमें बतलाने में तुम्हारी हानि नहीं होगी गेंदासिंह!

गेंदासिंह- सम्भव है, पर निश्चित ही आपको लाभ भी नहीं होगा महारानी?

रामसिंह- वह हमारे विचारने की बात है। तुम क्यों अपराधी बनते हो?

कनकश्री- अरे! यह गुलाब तो रुआँसा हो थर-थर काँप रहा है।

गेंदासिंह- क्षमा करें महारानी! यह हमारी व्यक्तिगत बात है, हमारी विवशता है। राज्य से या किसी भी अन्य व्यक्ति से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है।

रामसिंह- फिर छिपाने जैसी क्या बात है?

कनकश्री- (प्रेम से निकट बुलाकर) यहाँ आओ गुलाब! मैं वचन देती हूँ, तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। महाराज को बता दो क्या बात है।

गेंदासिंह- गुलाब नहीं, मैं बतलाऊँगा महाराज! गुलाब मेरी नव विवाहिता पत्नी है।

कनक श्री- गुलाब पत्नी है? मैंने कहा था न महाराज! कि एक नारी स्वर है। बस इसी से मेरे मन में शंका हो गई थी।

रामसिंह- पर यह कोई छिपाने जैसी बात तो है नहीं। सभी के विवाह होते हैं।

गेंदासिंह- पर मेरा विवाह विचित्र परिस्थिति में हुआ है महाराज! हम दोनों के जन्मोत्सव में ही हमारे माता-

जानकारी चाही थी।

रामसिंह- नहीं यह स्पष्ट झूठ है गेंदासिंह! सच बोलो गुलाब! तुम कौन हो? और कब से गेंदासिंह के साथ हो?

गुलाब- (घबराकर) जी, मैं गुलाब हूँ अन्नदाता।

कनकश्री- (स्नेह पूर्वक) यह तो हमें विदित है। महाराज यह जानना चाहते हैं कि तुम गेंदासिंह के कौन हो और कब से साथ रहते हो? घबराओ नहीं, सच-सच बतला दो। (गुलाब रुआँसी हो जाती है।)

गेंदासिंह- महाराज! हम दोनों दो माह से आपकी सेवा में हैं और आपके प्रति निष्ठावान हैं फिर भी यदि कोई अपराध अनजाने हो गया हो तो हम क्षमा चाहते हैं।

रामसिंह- ऐसी कोई बात नहीं हैं पर कोई रहस्य अवश्य है जो तुम छिपाते चले जा रहे हो।

कनकश्री- और छिपाना ही तुम्हारा महान अपराध है।

गेंदासिंह- परन्तु इससे सेवा के कार्य में कोई व्यवधान नहीं आया। मैं भगवान की साक्षीपूर्वक कहता हूँ कि हमारी स्वामी भक्ति अक्षुण्ण है। कभी भी किसी प्रकार का अंतर नहीं आया एवं प्रण करता हूँ कि भविष्य में भी कभी नहीं आयेगा।

रामसिंह- हमें तुमसे कोई शिकायत नहीं हैं किन्तु यह तो तुम स्वीकार कर रहे हो कि कुछ रहस्य अवश्य हैं।

कनकश्री- हमें बतलाने में तुम्हारी हानि नहीं होगी गेंदासिंह!

गेंदासिंह- सम्भव है, पर निश्चित ही आपको लाभ भी नहीं होगा महारानी?

रामसिंह- यह हमारे विचारने की बात है। तुम क्यों अपराधी बनते हो?

कनकश्री- अरे! यह गुलाब तो रुआँसा हो थर-थर काँप रहा है।

गेंदासिंह- क्षमा करें महारानी! यह हमारी व्यक्तिगत बात है, हमारी विवशता है। राज्य से या किसी भी अन्य व्यक्ति से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है।

रामसिंह- फिर छिपाने जैसी क्या बात है?

कनकश्री- (प्रेम से निकट बुलाकर) यहाँ आओ गुलाब! मैं वचन देती हूँ, तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। महाराज को बता दो क्या बात है।

गेंदासिंह- गुलाब नहीं, मैं बतलाऊँगा महाराज! गुलाब मेरी नव विवाहिता पत्नी है।

कनक श्री- गुलाब पत्नी है? मैंने कहा था न महाराज! कि एक नारी स्वर है। बस इसी से मेरे मन में शंका हो गई थी।

रामसिंह- पर यह कोई छिपाने जैसी बात तो है नहीं। सभी के विवाह होते हैं।

गेंदासिंह- पर मेरा विवाह विचित्र परिस्थिति में हुआ है महाराज! हम दोनों के जन्मोत्सव में ही हमारे माता-

...कारी चाही थी।

रामसिंह- नहीं यह स्पष्ट झूठ है गेंदासिंह! सच बोलो गुलाब तुम कौन हो? और कब से गेंदासिंह के साथ हो?

गुलाब- (घबराकर) जी, मैं गुलाब हूँ अन्नदाता।

कनकश्री- (स्नेह पूर्वक) यह तो हमें विदित है। महाराज यह जानना चाहते हैं कि तुम गेंदासिंह के कौन हो और कब से साथ रहते हो? घबराओ नहीं, सच-सच बतला दो। (गुलाब रुआँसी हो जाती है।)

गेंदासिंह- महाराज! हम दोनों दो माह से आपकी सेवा में हैं और आपके प्रति निष्ठावान हैं फिर भी यदि कोई अपराध अनजाने हो गया हो तो हम क्षमा चाहते हैं।

रामसिंह- ऐसी कोई बात नहीं हैं पर कोई रहस्य अवश्य है जो तुम छिपाते चले जा रहे हो।

कनकश्री- और छिपाना ही तुम्हारा महान अपराध है।

गेंदासिंह- परन्तु इससे सेवा के कार्य में कोई व्यवधान नहीं आया। मैं भगवान को साक्षीपूर्वक कहता हूँ कि हमारी स्वामी भक्ति अक्षुण्ण है। कभी भी किसी प्रकार का अंतर नहीं आया एवं प्रण करता हूँ कि भविष्य में भी कभी नहीं आयेगा।

रामसिंह- हमें तुमसे कोई शिकायत नहीं हैं किन्तु यह तो तुम स्वीकार कर रहे हो कि कुछ रहस्य अवश्य हैं।

कनकश्री- हमें बतलाने में तुम्हारी हानि नहीं होगी गेंदासिंह!

गेंदासिंह- सम्भव है, पर निश्चित ही आपको लाभ भी नहीं होगा महारानी?

रामसिंह- वह हमारे विचारने की बात है। तुम क्यों अपराधी बनते हो?

कनकश्री- अरे! यह गुलाब तो रुआँसा हो थर-थर काँप रहा है।

गेंदासिंह- क्षमा करें महारानी! यह हमारी व्यक्तिगत बात है, हमारी विवशता है। राज्य से या किसी भी अन्य व्यक्ति से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है।

रामसिंह- फिर छिपाने जैसी क्या बात है?

कनकश्री- (प्रेम से निकट बुलाकर) यहाँ आओ गुलाब! मैं वचन देती हूँ, तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। महाराज को बता दो क्या बात है।

गेंदासिंह- गुलाब नहीं, मैं बतलाऊँगा महाराज! गुलाब मेरी नव विवाहिता पत्नी है।

कनक श्री- गुलाब पत्नी है? मैंने कहा था न महाराज! कि एक नारी स्वर है। बस इसी से मेरे मन में शंका हो गई थी।

रामसिंह- पर यह कोई छिपाने जैसी बात तो है नहीं। सभी के विवाह होते हैं।

गेंदासिंह- पर मेरा विवाह विचित्र परिस्थिति में हुआ है महाराज! हम दोनों के जन्मोत्सव में ही हमारे माता-

जानकारी चाही थी।

रामसिंह- नहीं यह स्पष्ट झूठ है गेंदासिंह! सच बोलो गुलाब! तुम कौन हो? और कब से गेंदासिंह के साथ हो?

गुलाब- (घबराकर) जी, मैं गुलाब हूँ अन्नदाता।

कनकश्री- (स्नेह पूर्वक) यह तो हमें विदित है। महाराज यह जानना चाहते हैं कि तुम गेंदासिंह के कौन हो और कब से साथ रहते हो? घबराओ नहीं, सच-सच बतला दो। (गुलाब रुआँसी हो जाती है।)

गेंदासिंह- महाराज! हम दोनों दो माह से आपकी सेवा में हैं और आपके प्रति निष्ठावान हैं फिर भी यदि कोई अपराध अनजाने हो गया हो तो हम क्षमा चाहते हैं।

रामसिंह- ऐसी कोई बात नहीं हैं पर कोई रहस्य अवश्य है जो तुम छिपाते चले जा रहे हो।

कनकश्री- और छिपाना ही तुम्हारा महान अपराध है।

गेंदासिंह- परन्तु इससे सेवा के कार्य में कोई व्यवधान नहीं आया। मैं भगवान की साक्षीपूर्वक कहता हूँ कि हमारी स्वामी भक्ति अक्षुण्ण है। कभी भी किसी प्रकार का अंतर नहीं आया एवं प्रण करता हूँ कि भविष्य में भी कभी नहीं आयेगा।

रामसिंह- हमें तुमसे कोई शिकायत नहीं हैं किन्तु यह तो तुम स्वीकार कर रहे हो कि कुछ रहस्य अवश्य हैं।

कनकश्री- हमें बतलाने में तुम्हारी हानि नहीं होगी गेंदासिंह!

गेंदासिंह- सम्भव है, पर निश्चित ही आपको लाभ भी नहीं होगा महारानी?

रामसिंह- वह हमारे विचारने की बात है। तुम क्यों अपराधी बनते हो?

कनकश्री- अरे! यह गुलाब तो रुआँसा हो थर-थर काँप रहा है।

गेंदासिंह- क्षमा करें महारानी! यह हमारी व्यक्तिगत बात है, हमारी विवशता है। राज्य से या किसी भी अन्य व्यक्ति से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है।

रामसिंह- फिर छिपाने जैसी क्या बात है?

कनकश्री- (प्रेम से निकट बुलाकर) यहाँ आओ गुलाब! मैं वचन देती हूँ, तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। महाराज को बता दो क्या बात है।

गेंदासिंह- गुलाब नहीं, मैं बतलाऊँगा महाराज! गुलाब मेरी नव विवाहिता पत्नी है।

कनक श्री- गुलाब पत्नी है? मैंने कहा था न महाराज! कि एक नारी स्वर है। बस इसी से मेरे मन में शंका हो गई थी।

रामसिंह- पर यह कोई छिपाने जैसी बात तो है नहीं। सभी के विवाह होते हैं।

गेंदासिंह- पर मेरा विवाह विचित्र परिस्थिति में हुआ है महाराज! हम दोनों के जन्मोत्सव में ही हमारे माता-

जानकारी चाही थी।

रामसिंह- नहीं यह स्पष्ट झूठ है गेंदासिंह! सच बोलो गुलाब! तुम कौन हो? और कब से गेंदासिंह के साथ हो?

गुलाब- (घबराकर) जी, मैं गुलाब हूँ अन्नदाता ।

कनकश्री- (स्नेह पूर्वक) यह तो हमें विदित है। महाराज यह जानना चाहते हैं कि तुम गेंदासिंह के कौन हो और कब से साथ रहते हो? घबराओ नहीं, सच-सच बतला दो ।(गुलाब रुआँसी हो जाती है।)

गेंदासिंह- महाराज! हम दोनों दो माह से आपकी सेवा में हैं और आपके प्रति निष्ठावान हैं फिर भी यदि कोई अपराध अनजाने हो गया हो तो हम क्षमा चाहते हैं।

रामसिंह- ऐसी कोई बात नहीं हैं पर कोई रहस्य अवश्य है जो तुम छिपाते चले जा रहे हो।

कनकश्री- और छिपाना ही तुम्हारा महान अपराध है।

गेंदासिंह- परन्तु इससे सेवा के कार्य में कोई व्यवधान नहीं आया। मैं भगवान की साक्षीपूर्वक कहता हूँ कि हमारी स्वामी भक्ति अक्षुण्ण है। कभी भी किसी प्रकार का अंतर नहीं आया एवं प्रण करता हूँ कि भविष्य में भी कभी नहीं आयेगा।

रामसिंह- हमें तुमसे कोई शिकायत नहीं हैं किन्तु यह तो तुम स्वीकार कर रहे हो कि कुछ रहस्य अवश्य हैं।

कनकश्री- हमें बतलाने में तुम्हारी हानि नहीं होगी गेंदासिंह!

गेंदासिंह- सम्भव है, पर निश्चित ही आपको लाभ भी नहीं होगा महारानी?

रामसिंह- वह हमारे विचारने की बात है। तुम क्यों अपराधी बनते हो?

कनकश्री- अरे! यह गुलाब तो रुआँसा हो थर-थर काँप रहा है।

गेंदासिंह- क्षमा करें महारानी! यह हमारी व्यक्तिगत बात है, हमारी विवशता है। राज्य से या किसी भी अन्य व्यक्ति से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है।

रामसिंह- फिर छिपाने जैसी क्या बात है?

कनकश्री- (प्रेम से निकट बुलाकर) यहाँ आओ गुलाब! मैं वचन देती हूँ, तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ेगा। महाराज को बता दो क्या बात है।

गेंदासिंह- गुलाब नहीं, मैं बतलाऊँगा महाराज! गुलाब मेरी नव विवाहिता पत्नी है।

कनक श्री- गुलाब पत्नी है? मैंने कहा था न महाराज! कि एक नारी स्वर है। बस इसी से मेरे मन में शंका हो गई थी।

रामसिंह- पर यह कोई छिपाने जैसी बात तो है नहीं। सभी के विवाह होते हैं।

गेंदासिंह- पर मेरा विवाह विचित्र परिस्थिति में हुआ है महाराज! हम दोनों के जन्मोत्सव में ही हमारे माता-

पिता ने पारस्परिक मित्रता के फलस्वरूप सगाई पक्की कर समधी बनने का प्रण कर लिया था।

कनक श्री- यह तो बहुत अच्छा किया तुम्हारे माता-पिता ने भविष्य में दोनों को वर-वधू को खोजने की आवश्यकता ही नहीं रही।

गेंदासिंह- पर दैव को यह कहाँ स्वीकार था। मेरे माता-पिता का स्वर्गवास हो गया। मुझे निर्धनता न घेर लिया। गुलाब के पिता ने बुआ द्वारा भेजे गये विवाह के प्रस्ताव को अमान्य कर दिया। इससे मुझे अपने घोर अपमान का अनुभव हुआ।

कनकश्री- अपमान जैसी बात ही है एवं अपनी भारतीय संस्कृति के भी विरुद्ध है फिर विवाह कैसे हुआ ?

गेंदासिंह- गुलाब के पिता ने मुझसे बीस हजार रुपये की माँग की। मैंने ऋण लेना चाहा पर मुझे निर्धन अनाथ को ऋण देता कौन ?

रामसिंह- ऋण के लिए साख होना आवश्यक है।

गेंदासिंह- प्रयत्न करने पर ऋण तो मिल गया परन्तु कठोर अनुबंध के साथ।

कनकश्री- कठोर अनुबंध ?

गेंदासिंह- हाँ महारानी! वह यह कि जब तक मैं ऋण न चुकाऊँ तक तक ब्रह्मचर्य का पालन करूँ।

रामसिंह- अहो! साहूकार भी कितने क्रूर होते हैं।

गेंदासिंह- अनुबंध उचित ही है महाराज! गृहस्थी बढ़ने के पूर्व ऋण सुविधा से चुकाया जा सकता है। सौभाग्य से आपके यहाँ प्रहरी का कार्य मिल गया। पत्नी ने कहा कि हम दोनों कार्य करें तो अच्छा हो। पैसा भी अधिक मिलेगा और साथ भी सदैव बना रहेगा।

रामसिंह- (प्रसन्नता से) अच्छा तो ये तुम्हारी पत्नी की योजना थी। गुलाब भी बुद्धिमती है।

गेंदासिंह- आपका आशीर्वाद और अनुकंपा है श्रीमान्! पत्नी का विशेष आग्रह था कि हम रात्रि जागरण का ही कार्य करेंगे। आपने निवेदन स्वीकार कर मेरा महान उपकार किया महाराज!

रामसिंह- पर तुम इस अल्प वेतन में कब तक ऋण चुकाओगे गेंदासिंह!

गेंदासिंह- महाराज! चुकाने का संकल्प किया है तो कभी न कभी उऋण हो ही जायेंगे। ऋणदाता ने समय का प्रतिबन्ध तो लगाया नहीं है। प्रभु से बस यही प्रार्थना है कि ऋण मुक्ति तक व्रत का अखण्ड रूप से पालन कर सकूँ।

रामसिंह- धन्य है गेंदासिंह! तुम और तुम्हारी पत्नी। हम तुम्हारे ऋण को आज ही चुका कर तुम्हें ऋण

मुक्त कर देते हैं। ऐसे विश्वस्त सेवकों की हमें आवश्यकता है।

कनकश्री- सुन्दर निर्णय लिया राजन्! आप व्यक्ति के पारखी हैं।

रामसिंह- महारानी! हम गेंदासिंह की पदोन्नति कर राज महल की अंतरंग व्यवस्था का कार्य सौंपते हैं एवं गुलाब को अपनी घर गृहस्थी सम्भालने के लिए सेवा मुक्त करते हैं।

गुलाब- महाराज! मुझे भी सेवा का अवसर दें। महारानी के सानिध्य में रहकर अपना अहो भाग्य मानूँगी।

रामसिंह- स्वेच्छा से तुम कभी-भी यहाँ आ सकती हो। पर गृहस्थी को सुचारु रूपेण चलाना तुम्हारा प्रमुख कार्य है और गेंदासिंह! तुम भविष्य में भी इसीप्रकार उत्तरदायित्व का निर्वाह करोगे ऐसी आशा है।

गेंदासिंह- (हर्षातिरेक से आँखों में आँसू आ जाते हैं) ओह! सचमुच मैं ऋण-मुक्त हो गया महाराज! आप नरदेह में साक्षात् देवता स्वरूप हैं। आपकी प्रसन्नता मुझे वरदान बन गई। जन्म-जन्म आपका कृतज्ञ रहूँगा महाराज! आपकी सेवा में मैं अपना जीवन समर्पित करता हूँ।

रामसिंह- तुम जैसा निष्ठावान सेवक पाकर हम अत्यन्त प्रसन्न हैं।

मृगावती

पात्रानुक्रमणिका:

महारानी मृगावती	- कौशाम्बी की महारानी
सुभद्र	- कौशाम्बी के मन्त्री
विजयसेन	- कौशाम्बी के सेनापति
चण्डप्रद्योत	- उज्जयिनी के राजा
प्रतिहार	- सेवक
इन्द्रभूति गणधर	- भगवान महावीर के गणधर
उदयन	- महारानी मृगावती का पुत्र
कौशा	- अंबिका की दासी
अंबिका	- श्रेष्ठि की विधवा पत्नी

दृश्य-प्रथम

समय- प्रात:काल-प्रथम प्रहर

स्थान- कौशाम्बी नगर का राज प्रसाद

(कौशाम्बी नगरी की शासिका विधवा महारानी मृगावती हैं। उनके पति महाराज शतानीक का चन्द दिनों पूर्व स्वर्गवास हो गया है। पुत्र उदयन अभी बालक है; अत: वे ही राज्य संचालन कर रही हैं। उज्जयिनी नरेश चण्डप्रद्योत ने कौशाम्बी पर आक्रमण हेतु उसे चारों ओर से घेर लिया है। महारानी मृगावती चिन्तित अपने मंत्रणागृह में

मुक्त कर देते हैं। ऐसे विश्वस्त सेवकों की हमें आवश्यकता है।

कनकश्री– सुन्दर निर्णय लिया राजन्! आप व्यक्ति के पारखी हैं।

रामसिंह– महारानी! हम गेंदासिंह की पदोन्नति कर राज महल की अंतरंग व्यवस्था का कार्य सोंपते हैं एवं गुलाब को अपनी घर गृहस्थी सम्भालने के लिए सेवा मुक्त करते हैं।

गुलाब– महाराज! मुझे भी सेवा का अवसर दें। महारानी के सानिध्य में रहकर अपना अहो भाग्य मानूँगी।

रामसिंह– स्वेच्छा से तुम कभी-भी यहाँ आ सकती हो। पर गृहस्थी को सुचारु रूपेण चलाना तुम्हारा प्रमुख कार्य है और गेंदासिंह! तुम भविष्य में भी इसीप्रकार उत्तरदायित्व का निर्वाह करोगे ऐसी आशा है।

गेंदासिंह– (हर्षातिरेक से आँखों में आँसू आ जाते हैं) ओह! सचमुच मैं ऋण-मुक्त हो गया महाराज! आप नरदेह में साक्षात् देवता स्वरूप हैं। आपकी प्रसन्नता मुझे वरदान बन गई। जन्म-जन्म आपका कृतज्ञ रहूँगा महाराज! आपकी सेवा में मैं अपना जीवन समर्पित करता हूँ।

रामसिंह– तुम जैसा निष्ठावान सेवक पाकर हम अत्यन्त प्रसन्न हैं।

मृगावती

पात्रानुक्रमणिका:

महारानी मृगावती	– कौशाम्बी की महारानी
सुभद्र	– कौशाम्बी के मन्त्री
विजयसेन	– कौशाम्बी के सेनापति
चण्डप्रद्योत	– उज्जयिनी के राजा
प्रतिहार	– सेवक
इन्द्रभूति गणधर	– भगवान महावीर के गणधर
उदयन	– महारानी मृगावती का पुत्र
कौशा	– अंबिका की दासी
अंबिका	– श्रेष्ठि की विधवा पत्नी

दृश्य-प्रथम

समय– प्रात:काल-प्रथम प्रहर

स्थान– कौशाम्बी नगर का राज प्रसाद

(कौशाम्बी नगरी की शासिका विधवा महारानी मृगावती हैं। उनके पति महाराज शतानीक का चन्द दिनों पूर्व स्वर्गवास हो गया है। पुत्र उदयन अभी बालक है; अत: वे ही राज्य संचालन कर रही हैं। उज्जयिनी नरेश चण्डप्रद्योत ने कौशाम्बी पर आक्रमण हेतु उसे चारों ओर से घेर लिया है। महारानी मृगावती चिन्तित अपने मंत्रणागृह में

अमात्य आर्य सुभद्र से विचार विमर्श कर रही हैं)

मृगावती- हमारी आशंका सत्य हो गयी आर्य! रातों रात शत्रु ने नगरी को घेर लिया।

सुभद्र- हमारे गुप्तचरों ने यथावत् सन्देश संप्रेषित किए महारानी! वे लोग अपने कार्य में निपुण हैं, उनके सम्पर्क सूत्र दूर-दूर तक फैले हुए हैं।

मृगावती- इसी से हम आने वाली विपत्ति से पहिले ही सतर्क हो गए। अनायास जैसी स्थिति नहीं आने पाई।

विजयसेन- (प्रवेश कर) हमारा सैन्यपरिकर अपने खड्गों पर फिर से पानी चढ़ा युद्ध के लिए अविलम्ब प्रस्तुत है। सैन्य शिविरों में समयभेद किए बिना अहर्निशि युद्ध का अभ्यास किया जा रहा है महारानी!

मृगावती- मुझे आपसे ऐसी ही आशा है आर्य विजयसेन! हम आपकी ही बाट जोह रहे थे।

विजयसेन- आज्ञा दें महारानी! आदेश पाते ही मैं तत्काल सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। हमारा सैन्यदल भी आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा है।

सुभद्र- सेनाध्यक्ष! क्या हम यह विश्वास करें कि युद्ध में विजयश्री हमें वरेगी?

विजयसेन- कठिन अवश्य है आर्य अमात्य! परन्तु हम प्रयत्न करेंगे।

मृगावती- मेरा अनुमान है कि हमारा सैन्यपरिकर चण्डप्रद्योत की सेना के सम्मुख नहीं टिक सकेगा।

विजयसेन- यह निर्णय तो युद्ध क्षेत्र ही देगा। धृष्टता क्षमा करें महारानी! योद्धा बल पौरुष को तोलने में समय नष्ट नहीं करता। वह तो आक्रांता के दाँत खट्टे करने के लिए सदैव कटिबद्ध रहता है।

मृगावती- बिना बिचारे सेना को युद्ध में झोंक देना क्या उचित होगा?

विजयसेन- नहीं परन्तु जब युद्ध अनिवार्य हो तब? (गर्व से) महारानी! हमारी सेना भले ही अल्प हो परन्तु हमें अपनी व्यूह रचना पर गौरव है। इसीकारण हम शत्रु सेना से लोहा लेने में स्वयं को समर्थ पाते हैं।

सुभद्र- निस्सन्देह, आपकी व्यूह रचना अद्वितीय है सेनाध्यक्ष! इसी के बल पर हमारी सेना विजयी होती आई है और इसी युक्ति से विशाल सेना को पराजित किया जा सकता है।

विजयसेन- सुना है प्रद्योत अपने प्रचण्ड क्रोध के कारण चण्डप्रद्योत कहलाने लगा है।

मृगावती- हाँ, वह बहुत क्रोधी और दुष्ट प्रकृति है, अकारण ही बैर-विरोध ठान लेता है।

सुभद्र- आपकी बुद्धि चातुर्य से ही अब तक युद्ध टलता रहा

अमात्य आर्य सुभद्र से विचार विमर्श कर रही हैं)

मृगावती– हमारी आशंका सत्य हो गयी आर्य! रातों रात शत्रु ने नगरी को घेर लिया।

सुभद्र– हमारे गुप्तचरों ने यथावत् सन्देश संप्रेषित किए महारानी! वे लोग अपने कार्य में निपुण हैं, उनके सम्पर्क सूत्र दूर–दूर तक फैले हुए हैं।

मृगावती– इसी से हम आने वाली विपत्ति से पहिले ही सतर्क हो गए। अनायास जैसी स्थिति नहीं आने पाई।

विजयसेन– (प्रवेश कर) हमारा सैन्यपरिकर अपने खडगों पर फिर से पानी चढ़ा युद्ध के लिए अविलम्ब प्रस्तुत है। सैन्य शिविरों में समयभेद किए बिना अहर्निश युद्ध का अभ्यास किया जा रहा है महारानी!

मृगावती– मुझे आपसे ऐसी ही आशा है आर्य विजयसेन! हम आपकी ही बाट जोह रहे थे।

विजयसेन– आज्ञा दें महारानी! आदेश पाते ही मैं तत्काल सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। हमारा सैन्यदल भी आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहा है।

सुभद्र– सेनाध्यक्ष! क्या हम यह विश्वास करें कि युद्ध में विजयश्री हमें वरेगी?

विजयसेन– कठिन अवश्य है आर्य अमात्य! परन्तु हम प्रयत्न करेंगे।

मृगावती– मेरा अनुमान है कि हमारा सैन्यपरिकर चण्डप्रद्योत की सेना के सम्मुख नहीं टिक सकेगा।

विजयसेन– यह निर्णय तो युद्ध क्षेत्र ही देगा। धृष्टता क्षमा करें महारानी! योद्धा बल पौरुष को तोलने में समय नष्ट नहीं करता। वह तो आक्रांता के दाँत खट्टे करने के लिए सदैव कटिबद्ध रहता है।

मृगावती– बिना बिचारे सेना को युद्ध में झोंक देना क्या उचित होगा?

विजयसेन– नहीं परन्तु जब युद्ध अनिवार्य हो तव? (गर्व से) महारानी! हमारी सेना भले ही अल्प हो परन्तु हमें अपनी व्यूह रचना पर गौरव है। इसीकारण हम शत्रु सेना से लोहा लेने में स्वयं को समर्थ पाते हैं।

सुभद्र– निस्सन्देह, आपकी व्यूह रचना अद्वितीय है सेनाध्यक्ष! इसी के बल पर हमारी सेना विजयी होती आई है और इसी युक्ति से विशाल सेना को पराजित किया जा सकता है।

विजयसेन– सुना है प्रद्योत अपने प्रचण्ड क्रोध के कारण चण्डप्रद्योत कहलाने लगा है।

मृगावती– हाँ, वह बहुत क्रोधी और दुष्ट प्रकृति है, अकारण ही बैर–विरोध ठान लेता है।

सुभद्र– आपकी बुद्धि चातुर्य से ही अब तक युद्ध टलता रहा

है महारानी, वरन् वह तो... ।

विजयसेन- (व्यंग्य से) कब का स्वर्ग सिधार गया होता।

सुभद्र- (स्मित हास्य-सा बिखेरते हुए) यह कथन मिथ्या है आर्य विजयसेन ! क्योंकि वह अभी जीवित है।

विजयसेन- (उसी स्वर में) आप यह क्यों भूल रहें है कि उसने युद्ध नहीं किया। युद्ध करता तो अवश्य मैं उसे जीवित नहीं छोड़ता।

मृगावती- संभव है पर अकारण प्रजा का रक्त बहाने में कष्ट होता है आर्य! अब कोई बहाना नहीं खोजा जा सकता। महाराज होते तो प्रद्योत आक्रमण करने का दुस्साहस न करता।

सुभद्र- काल को प्रतिबंधित करना असम्भव है; अतः हम महाराज का निधन विवश हो देखते रहे किन्तु जब तक मैं जीवित हूँ महारानी ! तब तक आपका कोई बालबांका नहीं कर सकता। प्रजा आपके व युवराज उदयन के प्रति निष्ठावान है।

मृगावती- आर्य ! आप वृद्ध हैं ! श्वसुरजी भी आपकी मंत्रणा को प्रश्रय देते रहे हैं। मुझे भी आप सबका पूर्ण विश्वास है। राज्य के सर्वप्रथम शुभ चिंतक आप ही हैं।

विजयसेन- राज्य पर कुदृष्टि रखने वाले की हम आँख निकालने की सामर्थ्य रखते हैं। महारानी ! सत्य का पक्ष

अपनाने वाला आत्म विश्वासी वीर होता है, असत्य के पक्षी कायर में बल कितना ? वह तो प्रतिक्षण मृत्यु का आलिंगन करता है।

(प्रतिहार का प्रवेश)

प्रतिहार- महारानी ! उज्जयिनी नरेश चण्डप्रद्योत का दूत आया है। आपसे भेंट का आकाँक्षी है।

मृगावती- चण्डप्रद्योत का दूत ? आर्य अमात्य हमारी परीक्षा का अवसर सन्निकट है। हमें तुरन्त निर्णय लेना होगा।

सुभद्र- हमारा निर्णय ही है। अब एकमेव युद्ध का ही विकल्प शेष है महारानी ! क्योंकि चण्डप्रद्योत शांति से मानने वाला नहीं है। अविवेकी, अंधे व हठाग्रही को राह पर लाने का एक मात्र यही उपाय है।

मृगावती- दूत को भेज दो प्रतिहार !

प्रतिहार- जी महारानी !

(प्रतिहार का प्रस्थान। दूत का प्रवेश। वह आकर महारानी को अभिवादन करता है)

सुभद्र- (आसंदी की ओर संकेत कर) विराजो, कहो, किस अभिप्राय आगमन हुआ है ?

दूत- (बैठ कर) उज्जयिनी नरेश महाराजाधिराज चण्ड प्रद्योत का संदेश लेकर महारानी की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

मृगावती- (गंभीर स्वर में) क्या संदेश है ?

दूत- आपकी कुशल क्षेम के समाचार ज्ञात करने को अति उत्सुक हैं महाराजाधिराज।

सुभद्र- (व्यंग्य से) कुशल क्षेम जानने का अति सुन्दर ढंग है तुम्हारे महाराज का।

दूत- जो भी हो, हम सेवकगण महाराज के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करते। उन्होंने कहा कि महाराज शतानीक का मृत्यु शोक अब आपके हृदय पटल से धुल गया होगा ?

सुभद्र- तुम अपनी बात कहो दूत ! हमारी अंतरंग बातों से तुम्हें क्या प्रयोजन ? स्पष्ट कहो क्या कहना चाहते हो ?

दूत- महाराज का संदेश है कि आपका पुत्र उदयन अब वयस्क हो चला है; अतः आपने जो वचन दिया था, उसकी अविलम्ब पूर्ति करें।

मृगावती- (रोष पूर्वक) कैसा वचन ?

दूत- क्षमा करें महारानी! क्या आपने यह नहीं कहा था कि महाराज की अभिलाषा पूर्ति में उदयन का बचपन एवं पति की तात्कालिक मृत्यु बाधक है।

विजयसेन- (उत्तेजित हो म्यान से तलवार निकाल कर खड़े हो जाते हैं) प्रलाप बंद करो दूत! वरना तुम्हारा शीश

क्षण भर में धूल में लोटने लगेगा।

मृगावती- शांत हो सेनाध्यक्ष! संयम रखें। दूत अवध्य होता है।

विजयसेन- (बैठ जाते हैं) संयम की अपनी मर्यादा है महारानी। दूत सीमा उल्लंघन करे क्या अनुचित नहीं ?

सुभद्र- है, पर सज्जन अपनी मर्यादा का पालन करते हुए निष्कलंक रहते हैं।

मृगावती- 'यथा राजा तथा प्रजा' जिसका स्वामी ही मर्यादा खो बैठा हो उसके सेवक से मर्यादा की आशा रखना बालू से तेल निकालने के सदृश है।

दूत- मेरी हत्या से आपकी कठिनाइयाँ अधिक बढ़ जायेंगी सेनाध्यक्ष !

विजयसेन- कठिनाइयों से भयभीत कायर होते हैं। (तिरस्कार के स्वर में)

दूत- महारानी! मुझे क्या आज्ञा है? क्या कहूँ अपने स्वामी से ?

मृगावती- कह देना एक गुफा दो सिंहों का निवासस्थल नहीं बन सकती। जो मृत्यु महाराज शतानीक को ले जा चुकी है वह अब तुम्हारी खोज में व्यग्र है।

दूत- क्षत्रिय अपने वचन की रक्षा करते हैं। दुःख है कि आप अपना वचन भंग कर रहीं हैं।

सुभद्र- म्यान से अधिक बढ़ी हुई तलवार अशोभनीय हो

मृगावती- (गंभीर स्वर में) क्या संदेश है ?

दूत- आपकी कुशल क्षेम के समाचार ज्ञात करने को अति उत्सुक हैं महाराजाधिराज।

सुभद्र- (व्यंग्य से) कुशल क्षेम जानने का अति सुन्दर ढंग हैं तुम्हारे महाराज का।

दूत- जो भी हो, हम सेवकगण महाराज के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करते। उन्होंने कहा कि महाराज शतानीक का मृत्यु शोक अब आपके हृदय पटल से धुल गया होगा ?

सुभद्र- तुम अपनी बात कहो दूत ! हमारी अंतरंग बातों से तुम्हें क्या प्रयोजन ? स्पष्ट कहो क्या कहना चाहते हो ?

दूत- महाराज का संदेश है कि आपका पुत्र उदयन अब वयस्क हो चला है; अतः आपने जो वचन दिया था, उसकी अविलम्ब पूर्ति करें।

मृगावती- (रोष पूर्वक) कैसा वचन ?

दूत- क्षमा करें महारानी ! क्या आपने यह नहीं कहा था कि महाराज की अभिलाषा पूर्ति में उदयन का बचपन एवं पति की तात्कालिक मृत्यु बाधक है।

विजयसेन- (उत्तेजित हो म्यान से तलवार निकाल कर खड़े हो जाते हैं) प्रलाप बंद करो दूत ! वरना तुम्हारा शीश

क्षण भर में धूल में लोटने लगेगा।

मृगावती- शांत हो सेनाध्यक्ष ! संयम रखें ! दूत अवध्य होता है।

विजयसेन- (बैठ जाते हैं) संयम की अपनी मर्यादा है महारानी ! दूत सीमा उल्लंघन करे क्या अनुचित नहीं ?

सुभद्र- है, पर सज्जन अपनी मर्यादा का पालन करते हुए निष्कलंक रहते हैं।

मृगावती- 'यथा राजा तथा प्रजा' जिसका स्वामी ही मर्यादा खो बैठा हो उसके सेवक से मर्यादा की आशा रखना बालू से तेल निकालने के सदृश है।

दूत- मेरी हत्या से आपकी कठिनाइयाँ अधिक बढ़ जायेंगी सेनाध्यक्ष !

विजयसेन- कठिनाइयों से भयभीत कायर होते हैं। (तिरस्कार के स्वर में)

दूत- महारानी ! मुझे क्या आज्ञा है ? क्या कहें अपने स्वामी से ?

मृगावती- कह देना एक गुफा दो सिंहों का निवासस्थल नहीं बन सकती। जो मृत्यु महाराज शतानीक को ले जा चुकी है वह अब तुम्हारी खोज में व्यग्र है।

दूत- क्षत्रिय अपने वचन की रक्षा करते हैं। दुःख है कि आप अपना वचन भंग कर रहीं हैं।

सुभद्र- म्यान से अधिक बढ़ी हुई तलवार अशोभनीय हो

जाती है दूत ! अपनी स्थिति का ध्यान रखो।

दूत- आर्य अमात्य ! आप यह क्यों भूल रहे हैं कि इस समय मैं अपने महाराज का प्रतिनिधि हूँ, मेरा अपना व्यक्तित्व उसी में विलीन हो चुका है। महारानी! शोक की ओट में आपने हमारे महाराज से छल किया है।

विजयसेन- सावधान दूत ! वचन पर नियंत्रण अनिवार्य है।

दूत- सत्य कथन में नियंत्रण कैसा ? हमारे महाराज की सरलता का आपने अनुचित लाभ लिया। वे महारानी के निमंत्रण की प्रतीक्षा करते रहे और यही प्रवंचना।

सुभद्र- ऐसे निकृष्ट पामर को निमंत्रण ? ऐसा घृणित निंद्य प्रस्ताव रखते हुए तुम्हारे महाराज को शर्म आनी चाहिए दूत !

दूत- इसका परिणाम भयंकर होगा।

विजयसेन- विदित है हमें।

दूत- मैं अपने महाराज के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं सुनना चाहता।

विजयसेन- मूर्ख ! तुम इतना भी नहीं समझते कि हम कैसे अपनी महारानी के विरुद्ध सह सकेंगे।

दूत- तब यह स्मरण रखें कि इसप्रकार आप अपने राज्य

को भी विनाश से न बचा सकेंगे।

विजयसेन- (उपहास के स्वर में) अरे जा जा ! अपनी चिन्ता कर।

दूत- अहंकार में मत फूलें सेनाध्यक्ष ! आपकी मुट्ठी भर सेना हमारी सैन्यवाहिनी में डूबकर अस्तित्वहीन हो जायेगी।

सुभद्र- शृगाल-समूह के लिए एक सिंह ही पर्याप्त है। नैतिकता एवं आत्मविश्वास के प्रबल बल से ओत-प्रोत हमारा हृदय है, हम निर्भय हैं।

मृगावती- प्रतीत होता है कि तुम्हारे महाराज को अभी तक ऐसा दिव्य दर्पण नहीं मिला, जिसमें वे अपना वह बिंब देख सकते, जिसमें उनके हृदय की कुटिलता ही कुटिलता झाँक रही है।

दूत- ये सब व्यर्थ की बातें हैं। मैं अब अधिक कुछ नहीं कहना चाहता किन्तु आप पुनः विचार अवश्य कर लें। अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा। बुद्धिमान समय रहते चेत जाते हैं।

मृगावती- धृष्ट दूत! बहुत हो चुका। अनुचित सीमोल्लंघन असह्य होता जा रहा है।

दूत- अच्छा होता यदि आप अपनी स्वीकृति देकर युद्ध अवरुद्ध कर देतीं। निरपराध व्यक्तियों के रक्त की नदी बहाने के लिए हमें विवश न करें।

मृगावती- वाचाल दूत! यह उपदेश चण्डप्रद्योत को देना। तुम तत्काल हमारी राज्य सीमा से बाहर हो जाओ।

दूत- मैं जा रहा हूँ। महाराज के लिए आप का अंतिम संदेश क्या मैं जान सकता हूँ?

मृगावती- कह देना आलोक बिखेरती हुई दीपशिखा की चमक दूर से ही सुन्दर लगती है। पकड़ने पर वह हाथ जलाये बिना नहीं रहती।

दूत- कहते हैं दीप बुझने के पूर्व दूने आवेश से जल उठता है। (तीव्रगति से प्रस्थान)

मृगावती- प्रतिहार!

प्रतिहार - (उपस्थित हो) आज्ञा महारानी।

मृगावती- दूत को सुरक्षित नगर सीमा से बाहर पहुँचा दो।

प्रतिहार- जी तत्काल आज्ञा का पालन होगा। (क्षणिक सभी विचार मग्न मौन हैं। उस मौन को तोड़ती हैं महारानी मृगावती उनके स्वर में वेदना है)

मृगावती- आर्यवर! देखा चण्डप्रद्योत का साहस!

सुभद्र- पहाड़ की तलहटी में जाने के पूर्व ऊँट भी गर्व करता है। महारानी! वासना के घिनावने पथ पर शौर्य कितने क्षण साथ दे सकेगा?

मृगावती- अकारण हिंसा की कल्पना कर मन काँप उठता है! यह सब क्यों? एक मात्र मेरे ही कारण न? इस

जीवन से अब जीवन ही यातना बन गया तब जीने का क्या अर्थ?

सुभद्र- ओह! आप इतनी निराश क्यों होती हैं महारानी!

मृगावती- इस विशाल विश्व में मेरे लिए सुख निःशेष हो चुका है आर्य अमात्य! पर जीवन का क्या करूँ? साँसों की गति अवरुद्ध करने की क्षमता नहीं है। जितनी साँसें चलना है, वे चलकर ही रुकती हैं।

सुभद्र- यही चरम सत्य है। इस बात को यथावत् स्वीकार करना ही तो वीरता है।

विजयसेन- हम बलात् किसी से बैर-विरोध नहीं करते पर कोई हमें छेड़े तो पीछे भी नहीं हटते, समुचित प्रतिकार करते हैं।

सुभद्र- निर्जीव काष्ठ भी राख बनने तक निरन्तर आग से जूझता है फिर हम क्यों शीश झुकाकर अत्याचार सहें?

मृगावती- जानती हूँ आर्य! सतीत्व लुटाने को नहीं सुरक्षित रखने की वस्तु है और इसकी सुरक्षा में जनधन ही नहीं अपने प्राण भी दाँव पर लगा दिए जाते हैं।

विजयसेन- वीरता के अनुरूप आपके वचन हैं महारानी! नश्वर तन-धन का व्यामोह वीरों को नहीं होता।

सुभद्र- यह उचित ही है। आर्य नारी सतीत्व पर आँच आने

पर आँसू बहा कर करुण विलाप नहीं करती, प्रत्युत प्रतिपक्ष लुटेरे को उसके किये का फल चखाने का साहस रखती है।

मृगावती– चिंता तो यही है कि हमारी सेना अल्प है।

विजयसेन– तब भी क्या हुआ ? हमारे एक–एक योद्धा सौ–सौ को मारकर मरेंगे। शत्रु की विजय भी उपहास करेगी। (अनायास दूर से आए जय–जयकार के स्वर अस्पष्ट कर्णगत होते हैं। सब ध्यान से सुनने का यत्न करते हैं। निकट आते हुए समवेत स्वर सुनाई पड़ते हैं)

समवेत स्वर– परम भट्टारक भगवान महावीर की जय! देवाधिदेव महावीर की जय! अहिंसा धर्म की जय! जय! जय! भगवान के समवशरण की जय।

मृगावती – जय–जयकार के स्वरों से वायुमंडल मुखरित हो उठा है।

विजयसेन– प्रतीत होता है भगवान महावीर का समवशरण आया है हमारी कौशाम्बी में।

सुभद्र– स्वर स्पष्ट होने लगे हैं। सुनें महारानी!

नेपथ्य– भगवान महावीर की जय।

मृगावती– अहोभाग्य हमारे। भगवान चतुर्विध संघ सहित पधारकर हमें कृतार्थ करने स्वयं आ गए। पर हमारा दुर्भाग्य कि हम शत्रुओं से घिरे हुए हैं।

विजयसेन–

मृगावती– आर्य विजयसेन! भगवान के समीप दुर्भाग्य भी सौभाग्य में परिवर्तित हो जाता है।

विजयसेन– इतनी विशाल धर्म सभा के लिए नगर के मध्य उपयुक्त स्थान के अभाव में समवशरण नगर के बाहर रहेगा, तब हम कैसे प्रभु दर्शन का लाभ ले सकेंगे ?

मृगावती– क्या बाधा है ? जहाँ वीतराग भगवान विराजमान हैं, वहाँ भय कैसा ? नगर के समस्त द्वार खोल दिये जाएँ। हम सब आनंद पूर्वक दर्शन, प्रवचन का लाभ उठाएँ।

सुभद्र– क्या कह रही हैं महारानी ? शत्रु को क्या स्वेच्छा से राज्य समर्पित कर देना है ?

विजयसेन– अभी हम समर के लिए कटिबद्ध थे और चंद क्षणों पश्चात् आत्मसमर्पण के लिए स्वयं को प्रस्तुत कर रहे हैं ? यह क्या उचित होगा ?

सुभद्र– हमारी प्रजा त्रस्त हो हाहाकार कर उठेगी महारानी! नगर द्वार उन्मुक्त कर देना आत्मघात के सदृश होगा।

मृगावती– नहीं, समवशरण के निकट अनर्थ असम्भव है। वीतरागता के प्रभाव से दूर–दूर तक शांति स्वयमेव स्थापित हो जाती है।

विजयसेन– (आश्चर्य पूर्वक) सच!

मृगावती– हां, आप गुप्तचरों से पता लगवा सकते हैं। आर्य

अमात्य कृपया आप उद्घोषक से घोषणा प्रसारित कराने का कष्ट करें ताकि नागरिक निर्भीक हो प्रभु की वन्दना, अर्चना कर सकें।

सुभद्र- तथास्तु!

मृगावती- और उदयन को भी बुलायें। मैं उसे अपने साथ अभी ले जाऊँगी।

सुभद्र- वे कहीं वीणा वादन में तन्मय होगें।

उदयन- (प्रवेश कर) नहीं, ऐसा ज्ञात होता है माँ श्री! जैसे प्रभु वीर पधारे हैं। देखो न अभी-भी जय-जयकार के स्वर गूँज रहे हैं।

मृगावती- तुम्हारा अनुमान यथार्थ है वत्स!

उदयन- तो वहाँ चलेंगी नहीं आप? मैं वीणा वादन छोड़ कर आया हूँ।

मृगावती- चलो, चलो। मैं वहीं जा रहीं हूँ। हम भगवान महावीर का धर्मोपदेश सुनेंगे।

विजयसेन- चलें महारानी! सेवक आपके साथ है।

सुभद्र- उद्घोषक को सूचना संप्रेषित कर हम भी वहीं चलेंगे।

मृगावती- सहर्ष चलें आर्य! मैं यहीं आपकी प्रतीक्षा करूँगी।

दृश्य-द्वितीय

समय-तृतीय प्रहर

स्थान - भगवान महावीर का समवशरण

(भगवान महावीर का समवशरण कौशाम्बी नगरी के बाहर वन में है। समवशरण के मध्य कमलासन पर प्रभु विराजमान हैं। वहाँ अनेक नर-नारी धर्मोपदेश श्रवण कर रहे हैं। महारानी मृगावती, पुत्र उदयन, अमात्य सुभद्र एवं सेनाध्यक्ष आर्य विजयसेन आकर भगवान को भूप्रणत हो नमस्कार कर निर्दिष्ट कक्षों में बैठ जाते हैं। चण्डप्रद्योत वहाँ पहले से ही बैठा है। दिव्यदेशना अनवरत चल रही है)

(भगवान महावीर स्वामी की ओंकारमयी दिव्यध्वनि खिर रही है)

(भव्यजनों! भगवान की वाणी संसार के उस रहस्य को खोल रही है जिस पर संसारी मुग्ध हो आत्म वैभव लुटा रहे हैं)

इन्द्रभूति- राजन्! चित्ताकर्षक ये कामभोग क्षण भर सुख का प्रतिभास देकर चिरकाल तक दुःख देते हैं एवं अनेक अनर्थों के जनक हैं। इनमें फँस कर प्राणी मुक्ति चाहकर भी मुक्त नहीं हो सकता। संसार सुख राई -सा क्षुद्रतम व दुःख मेरू- सा महान है।

प्रद्योत– सत्य है, वासना की मृगमरीचिका ने मुझसे मेरी मानवता भी छीन ली। मैं अन्धा अविवेकी हो अनर्थ करने पर तुल गया था देव!

इन्द्रभूति– प्रद्योत! भोगासक्ति और अनर्थ सिक्के के दो पक्ष हैं। मक्खी कफ में आसक्तिवश ही फँसती और ज्यों-ज्यों कष्ट से छटपटाती है, त्यों-त्यों अधिक अधिक फँसती हुई प्राण तक गँवा बैठती है।

प्रद्योत– बस यही दशा मेरी हो रही है भंते! अपने दुष्कृत्यों पर मुझे पश्चाताप हो रहा है।

इन्द्रभूति– भगवान का उपदेश है राजन्! कि जैसे दुःख तुम्हें प्रिय नहीं, वैसे ही सब जीवों को दुख प्रिय नहीं हैं; अतः समस्त प्राणियों को आत्मसदृश समझकर सावधान हो, स्व पर दया करो।

(महिला कक्ष में एक श्रेष्ठी की विधवा पत्नी अंबिका ध्यान मग्न हो देशना सुन रही है। उसकी दासी कौशा घबराई हुई आती है। उन दोनों का वार्तालाप सबका मन आकर्षित कर लेता)

कौशा– (घबराए स्वर में) स्वामिनी!

(अंबिका कौशा की ओर बिना देखे हाथ से मौन रहने का संकेत करती है)

कौशा– (अधिक तीव्र स्वर में) प्रासाद में तस्करों ने प्रवेश कर लिया था स्वामिनी!

अंबिका– शांत बैठ जा कौशा! सुन कैसी दुर्लभ देशना हो रही है।

कौशा– (अनसुनी कर कंधे झकझोरते हुए) आप मेरी बात सुन रही हैं या नहीं? मैं कह रही हूँ महलों में चोर आ गये थे।

अंबिका– आ जाने दे कौशा! उन्हें जिस वस्तु की आवश्यकता होगी ले जाएँगे पर तू जड़-संपत्ति के पीछे मेरे अमूल्य क्षण नष्ट क्यों कर रही है?

कौशा– मेरी पूरी बात तो सुनें। मुझे हर्ष है कि चोर कुछ भी नहीं ले जा सके।

अंबिका– फिर इतनी व्यग्रता क्यों? जा! आज से उस संपत्ति की स्वामिनी तू है।

कौशा– (विस्फारित नेत्रों से देखते हुए) क्या कह रही हैं आप? स्वस्थ तो हैं न?

अंबिका– (हँस पड़ती है) तुझे अस्वस्थ दीख रही हूँ क्या? (स्नेहासिक्त स्वर में) प्रभु अपनी नगरी में पधारे हैं कौशा! मैं उनसे मंगलमयी शिवकारिणी अत्यन्त दुर्लभ प्रव्रज्या लूँगी।

मृगावती– धन्य हो अंबिका! तुम्हारी निर्लिप्तता अनुकरणीय है। तुमने वासना पर विजय प्राप्त कर ली है।

अंबिका- अभी कहाँ महारानी! साधना के बिना वासना का उच्छेद सम्भव नहीं। अतएव अब प्रभु के मार्ग का अनुसरण करूँगी ताकि दु:ख से मुक्ति मिल सके।

प्रद्योत- हे प्रभो! जीवों को दु:ख प्राप्ति क्यों होती है?

इन्द्रभूति- समझे राजन्! जन्म-मरण ही दु:ख दाता है। इनका प्रमुख कारण एक मात्र मोहजन्य परिणाम है एवं मोह को उत्पन्न करने वाले बीज राग-द्वेषमय विकार हैं।

मृगावती- भंते! जन्म-मरण को नष्ट कर दें तो दु:ख नहीं होगा?

इन्द्रभूति- नहीं, परन्तु सर्वप्रथम राग-द्वेष को नष्ट करना होगा। जैसे बीज के अभाव से वृक्ष की उत्पत्ति नहीं होती, वैसे ही राग-द्वेष के अभाव में जन्म-मरण की प्रक्रिया नहीं होती।

मृगावती- तव वह युक्ति मुझे बतला दें प्रभु! मैं उसी राह जाने को उत्सुक हूँ। मेरा मन अत्यधिक अशांत है।

इन्द्रभूति- हे मृगावती! भगवान का कथन है कि जो भव सागर के पार जाने का इच्छुक हैं, वही शीघ्र ही तप संयमरूपी नाव में आरूढ़ हो किनारा पा जाता है।

मृगावती- तब मुझे आर्यिका दीक्षा दें प्रभु! मैं भी अब आराधना की शरण ग्रहण करूँगी। (प्रद्योत की ओर भयभीत हो कातर दृष्टि से देखती है)

इन्द्रभूति- मृगावती! वीतराग के समीप बैठकर भी भय क्यों? दीक्षित होने के पूर्व आत्मविश्वास अनिवार्य है।

प्रद्योत- मेरी ओर से निर्भय हों महारानी! मैंने अपनी दुर्दमनीय वासना से स्वत: अपना पतन कर लिया था। मैं लज्जित हूँ, आपसे किस मुख से क्षमा याचना करूँ।

मृगावती- (आश्चर्य तथा हर्ष मिश्रित स्वर में) तो मैं यह आशा करूँ कि आपने मुझसे शत्रुभाव त्याग दिया है?

प्रद्योत- (दृढ़तापूर्वक) निस्संदेह महारानी! मेरी ओर से आप पूर्णत: निश्चिन्त हों। साक्षात् वीतराग देव की वाणी सुनकर मूर्च्छा न टूटी तो मुझ-सा अभागा और कौन होगा?

सुभद्र- वीतरागता के अप्रतिम प्रभाव की महिमा आज ज्ञात हुई। बालरवि के आगमन का संदेश पाकर प्राची के साथ प्रतीची में भी लालिमा छा जाती है तो फिर निरंजन निर्विकार परमात्मा के सानिध्य में क्यों न मन में पवित्रता आएगी?

विजयसेन- मुझे तो घोर आश्चर्य हो रहा है।

मृगावती- परम प्रसन्नता हुई राजन्! मुझे आपकी अनुमति की अपेक्षा थी, जो आपने सहर्ष प्रदान कर दी। अब मैं

शांति पूर्वक आत्म आराधना कर सकूँगी।

प्रद्योत- महारानी! आप निर्द्वन्द्व हो प्रवृज्या स्वीकार करें, मुझसे महत् भूल हुई है। विश्वास है आप मुझे अवश्य क्षमादान करेंगी।

मृगावती- **राजन्! प्रवृज्या से कहीं अधिक महत्वपूर्ण बैर का विसर्जन है। निश्चित ही हम एक-दूसरे को क्षमा कर चुके हैं। मेरा एक आग्रह है, क्या आप उसे स्वीकार करेंगे ?**

प्रद्योत - एक नहीं सौ। आप नि:संकोच कहें।

मृगावती- पितृहीन बालक उदयन अभी अबोध है; अतएव आप से निवेदन है कि आप उसे राजोचित शिक्षा-दीक्षा से अलंकृत करें एवं उसके वयस्क होने तक राज्य संचालन का उत्तरदायित्व भी आप ही वहन करें।

प्रद्योत- तथास्तु, मैं वचन देता हूँ महारानी! कि आज से बालक उदयन आपका नहीं मेरा पुत्र होगा। मैं प्राणपण से उसे सर्व प्रकार से योग्य बनाने का प्रयत्न करूँगा।

मृगावती- कृतज्ञ हूँ राजन्!

उदयन- माँ श्री! यह निर्णय आपने कैसे ले लिया? (उदास हो जाता है, कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है)

मृगावती- वत्स! (गंभीर स्वर में) इन मंगलमय क्षणों में उदास क्यों? तुम भी ऐसी भावना करो कि ऐसा शुभ दिवस शीघ्र ही आए जब मैं आत्म पुरुषार्थी बन आत्मसिद्धि करूँ।

उदयन- आशीर्वाद दें माँ श्री! कि ऐसा सद्प्रयत्न कर उपयुक्त पात्र बन सकूँ।

मृगावती- मेरी शुभ कामनाएँ तुम्हारे साथ हैं।

प्रद्योत - काश! मेरा हृदय भी ऐसा ही शांत समथर हो पाता। महारानी! आपकी समता से मैं पराजित हो गया। धन्य है आपका जीवन।

मृगावती- मानव जीवन की सार्थकता संयम में ही है राजन्! करुणा कर मुझे प्रवृज्या देने की कृपा करें। **जय श्री ॐ णमो अरहंताणं।**

अम्बिका- महारानी! अकेले नहीं, मुझे भी साथ ले लें। देव! मुझे भी आर्यिका पद प्रदान करें।

इन्द्रभूति- कल्याण हो आर्ये! कल्याण हो! प्रभु संघ में सबका निर्विरोध प्रवेश है।

खुला मुक्ति का द्वार

पात्रानुक्रमणिका:

नागधर्म	- उज्जयिनी नरेश
नागदत्ता	- नागधर्म की पत्नी (महारानी)
नागकुमार	- नागधर्म का पुत्र
ज्योत्स्ना	- नागधर्म की पुत्री राजकुमारी
सपेरा	- स्वर्ग निवासी देव
सुदत्त	- दस्यु नायक
मोहनसिंह, लालसिंह, हरिसिंह	- दस्यु दल

(दो देवकुमारों ने स्वर्ग में निर्णय लिया कि हम मर्त्यलोक में अवतरण ले अपने दुर्लभ मानव जीवन को विषय वासनाओं में व्यर्थ न खो, साधु होकर तपश्चरण पूर्वक आत्म साधना करेंगे। जो पहिले मनुष्यभव धारण कर ऐसा न करे तो स्वर्गस्थ देव उसे पूर्व जन्म में लिए इस निर्णय को स्मरण कराकर प्रतिज्ञा पालने के लिए बाध्य करेगा। ऐसा ही हुआ। एक देव आयु पूर्ण कर उज्जयिनी नरेश नागधर्म की रानी नागदत्त का पुत्र नागकुमार हुआ।

अद्भुत था वह राजकुमार, विलक्षण थी इसकी रुचि। नागों से क्रीड़ा करता और बाद में उनके विषदन्त उखाड़ उन्हें

निर्विष कर देता था। राजा-रानी अपने इकलौते लाड़ले की इस भयंकर रुचि से भयभीत रहते थे। नागकुमार को समझाया, प्रताड़ित किया किन्तु सब निरर्थक रहा। राजकुमार की रुचि उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। वह सर्प क्रीड़ा में निरंतर मग्न रहने लगा। बचपन, किशोरावस्था पार कर यौवन काल भी आ गया परन्तु नागकुमार के व्यसन में कोई अंतर नहीं आया। मित्र देव ने अपने विशिष्ट ज्ञान से ज्ञात किया कि नागकुमार अपना जीवन अज्ञानता में खो रहा है, यह उचित नहीं। उसने अपने मित्र को शिक्षा देने की योजना बनाई)

दृश्य-प्रथम

समय-मध्याह्न

स्थान- राजप्रासाद प्रांगण

(नागकुमार नागों के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। उन्हें द्वार पर प्रहरी के साथ किसी का वार्तालाप सुनाई पड़ता है। वे दत्तचित हो सुनने लगते हैं)

प्रहरी- भला इसी में है कि आप चले जायें।

सपेरा- (दृढ़तापूर्वक) असम्भव, मैं राजकुमार से मिलकर ही जाऊँगा।

प्रहरी- यह तुम्हारी धृष्टता होगी। इसका फल तुम्हें अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ेगा।

सपेरा- ऐसा क्यों? मैं सुदूर नाग देश का वासी, नागों का अधिपति। उज्जयिनी नगरी के राजपुत्र नागकुमार को नागक्रीड़ा में सिद्धहस्त जानकर उनसे भेंट करने

खुला मुक्ति का द्वार

पात्रानुक्रमणिकाः

नागधर्म	– उज्जयिनी नरेश
नागदत्ता	– नागधर्म की पत्नी (महारानी)
नागकुमार	– नागधर्म का पुत्र
ज्योत्स्ना	– नागधर्म की पुत्री राजकुमारी
सपेरा	– स्वर्ग निवासी देव
सूरदत्त	– दस्यु नायक
मोहनसिंह	दस्यु दल
लालसिंह	दस्यु दल
हरिसिंह	दस्यु दल

(दो देवकुमारों ने स्वर्ग में निर्णय लिया कि हम मर्त्यलोक में अवतरण ले अपने दुर्लभ मानव जीवन को विषय वासनाओं में व्यर्थ न खो, साधु होकर तपश्चरण पूर्वक आत्म साधना करेंगे। जो पहिले मनुष्यभव धारण कर ऐसा न करे तो स्वर्गस्थ देव उसे पूर्व जन्म में लिए इस निर्णय को स्मरण कराकर प्रतिज्ञा पालने के लिए बाध्य करेगा। ऐसा ही हुआ। एक देव आयु पूर्ण कर उज्जयिनी नरेश नागधर्म की रानी नागदत्त का पुत्र नागकुमार हुआ।

अद्भुत था यह राजकुमार, विलक्षण थी इसकी रुचि। नागों से क्रीड़ा करता और बाद में उनके विषदन्त उखाड़ उन्हें निर्विष कर देता था। राजा-रानी अपने इकलौते लाड़ले की इस भंयकर रुचि से भयभीत रहते थे। नागकुमार को समझाया, प्रताड़ित किया किन्तु सब निरर्थक रहा। राजकुमार की रुचि उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। वह सर्प क्रीड़ा में निरंतर मग्न रहने लगा। बचपन, किशोरावस्था पार कर यौवन काल भी आ गया परन्तु नागकुमार के व्यसन में कोई अंतर नहीं आया। मित्र देव ने अपने विशिष्ट ज्ञान से ज्ञात किया कि नागकुमार अपना जीवन अज्ञानता में खो रहा है, यह उचित नहीं। उसने अपने मित्र को शिक्षा देने की योजना बनाई)

दृश्य-प्रथम

समय-मध्याह्न

स्थान- राजप्रासाद प्रांगण

(नागकुमार नागों के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। उन्हें द्वार पर प्रहरी के साथ किसी का वार्तालाप सुनाई पड़ता है। वे दत्तचित हो सुनने लगते हैं)

प्रहरी- भला इसी में हैं कि आप चले जायें।

सपेरा- (दृढ़तापूर्वक) असभंव, मैं राजकुमार से मिलकर ही जाऊँगा।

प्रहरी- यह तुम्हारी धृष्टता होगी। इसका फल तुम्हें अपने प्राणों से भी हाथ धोना पड़ेगा।

सपेरा- ऐसा क्यों ? मैं सुदूर नाग देश का वासी, नागों का अधिपति। उज्जयिनी नगरी के राजपुत्र नागकुमार को नागक्रीड़ा में सिद्धहस्त जानकर उनसे भेंट करने

आया हूँ और तुम कहते हो लौट जाओ। प्यासा जलाशय के निकट आकर बिना जलपान किए लौट जाए?

प्रहरी- (किंचित् नम्र हो समझाते हुए) अच्छा, ऐसा करो, तुम ये नागों का पिटारा यहीं बाहर छोड़ दो और कुमार से भेंट कर अपना पिटारा लेते हुए चले जाना।

सपेरा- (व्यंग्य से) अति सुन्दर! सम्मति के लिए धन्यवाद। क्यों बंधु! कोई अपने प्राण छोड़कर भी कहीं गया है।

प्रहरी- (खिसियाकर) क्या पिटारा छोड़ने से तुम निष्प्राण हो जाओगे? फिर एक ही पिटारा क्यों? दस बीस पिटारे सिर पर रख लो।

सपेरा- (स्नेह पूर्वक) बंधु! नाग मेरे प्राणों से कम नहीं हैं। ले ये पाँच रतन मुद्राएँ और मुझे राजकुमार से मिलवा दो।

प्रहरी- उत्कोच! न न न न मुझे नहीं चाहिए। मुझे अपने प्राण प्यारे हैं। कदाचित् तुम्हें ज्ञान नहीं हैं–राजाज्ञा है कि कोई भी सपेरा राजप्रासाद में प्रवेश नहीं पा सकता।

सपेरा- ओह! तो ये बात है। (प्रार्थना के स्वर में) बंधु! दस मुद्रायें ले लो। बस एक बार भेंट करवा दो। अपने नागों का खेल दिखला कर मैं चुपचाप चला

जाऊँगा। मैं वचन देता हूँ कि जो भी पुरस्कार स्वरूप मिलेगा, आधा तुम्हें भी दूँगा।

(नागकुमार सब बातें सुनकर उच्च स्वर से सपेरे को बुलवाते हैं)

नागकुमार- प्रहरी! सपेरे को यहाँ आने दो।

प्रहरी- (प्रवेश कर) कुमार! राजाज्ञा के उल्लंघन करने से मुझे अपराधी न बनायें।

नागकुमार- इसकी चिन्ता तुम मत करो। मैं क्षमादान दिला दूँगा।

प्रहरी- फिर भी यह कार्य उचित नहीं है। (सपेरा चुपचाप वहाँ आ जाता है)

नागकुमार- (सपेरे को देख) आओ, भय मत करो। दिखलाओ अपने नाग। प्रहरी! तुम जा सकते हो।

सपेरा- (बैठकर) आपसे भेंट करने की प्रबल उत्कंठा थी कुमार।

नागकुमार- मुझे नागों से क्रीड़ा करने में आनंद आता है सपेरे! निकालो अपने नाग, मैं उनसे क्रीड़ा करूँगा।

सपेरा- कुमार! मेरे नाग महा विषैले साक्षात् काल सदृश असाधारण हैं। मैं ही उनका खेल दिखलाकर आपका मनोरंजन कर दूँगा।

नागकुमार- इससे मुझे संतुष्टि नहीं होगी। मैं स्वयं खेलूँगा, मैं भी तो देखूँ वे कैसे विषैले हैं।

सपेरा- आप इतने हठी हैं। मुझे ज्ञान न था वरन् मैं यहाँ आता ही नहीं।

नागकुमार- मेरी दक्षता से तुम परिचित नहीं हो, इसीलिए ऐसा कह रहे हो। (पिटारे से नाग निकालने का उपक्रम करता है)

सपेरा- (घबराकर) अरे! अरे! कृपया रुको कुमार! मैं स्वयं निकाल देता हूँ। (एक नाग निकालकर बाहर छोड़ देता है) सावधान रहें कुमार!

नागकुमार- (नाग को पकड़कर) ओह! इस साधारण से कीड़े का तुम्हें इतना अभिमान? ये तो स्वयं भयभीत है। कोई विषैला भयंकर नाग दिखाओ तो मेरी दक्षता का परीक्षण हो। सिंह के बल का अनुमान गीदड़ को भगाने से नहीं किया जा सकता।

सपेरा- क्षमा करें कुमार! आपकी चुनौती मुझे स्वीकार नहीं। विषैले नाग को मैं कदापि नहीं निकालूँगा। उसकी फुंकार से ही मूर्छा आने लगती है। दंशन के पश्चात् तो कोई उपचार भी नहीं है।

(महाराज नागधर्म का प्रवेश)

नागधर्म- आयुष्मान्! तुम्हें कितना समझाया कि नागों से खेलना कोई बुद्धिमानी नहीं है पर तुम मानते ही नहीं हो। इन क्रूर जीवों का क्या विश्वास?

नागकुमार- पिताश्री! मैं नाग क्रीड़ा में दक्ष हो गया हूँ फिर किस बात का भय? नाग तो मुझे साधारण कीड़ो से अधिक प्रतीत नहीं होते।

नागधर्म- फिर भी जो स्वभावतः दुष्ट हैं, उनसे दूर रहना ही श्रेष्ठ है।

नागकुमार- ममता के धुंधले दर्पण में यथार्थ के दर्शन नहीं हो पाते तात्!

सपेरा- यह उक्ति तो आप पर भी घटित होती है कुमार! उपदेश देना जितना सरल है, आचरण उतना ही कठिन है।

नागकुमार- तुम्हारे कथन का क्या अभिप्राय है सपेरे?

सपेरा- बुद्धिमान को संकेत ही पर्याप्त होते हैं कुमार!

नागकुमार- तुम व्यर्थ ही समय नष्ट कर रहे हो। पिताश्री आप से एक तुच्छ निवेदन है, पूर्ण करने हेतु वचन दें तो कहूँ।

नागधर्म- तुम्हारी बात कभी टाली है?

नागकुमार- (आग्रह भरे स्वर में) इस सपेरे को समझायें न आप कि यह अपना दूसरा नाग भी दिखाए।

सपेरा- राजन्! वह नाग अत्यन्त विषैला है। तनिक-सी चूक प्राण घातक हो सकती है।

नागकुमार- तुम मेरी अद्भुत शक्ति से अपरिचित हो सपेरे! (आदेश देने के स्वर में) निकालो नाग।

सपेरा- (विवश हो) राजन्!

नागधर्म- तुम बहुत हठी हो नागकुमार! नए नागों से तुम

प्रतिदिन ही क्रीड़ा करते हो, एक नाग न सही।

नागकुमार- (अनुनय-विनय करते हुए) नहीं पिताश्री! सपेरा उनकी भयंकरता की बार-बार घोषणा कर रहा है। मैं भी तो देखूँ वह कितना भयंकर है।

सपेरा- आप साक्षी हैं महाभाग! दैववश कुछ हो गया तो उपचार न हो सकेगा। मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। बिना आपकी आज्ञा के नाग बाहर नहीं निकालूँगा।

नागकुमार- पर मैं समर्थ हूँ। तुम चिन्ता न करो।

नागधर्म- निकाल दो नाग। राजकुमार अपनी निर्भयता के लिए प्रसिद्ध है।

नागकुमार- आप कितने अच्छे हैं पिताश्री!

(सपेरा पिटारे से नाग निकालता है। नाग आग्नेय नेत्रों से अपने प्रतिद्वन्द्वी को देखता है)

नागकुमार- (नाग को पकड़ते हुए) ओह! तुम्हारा यह रौद्र रूप? देखो अभी तुम्हें।

(नागकुमार अभिमान से बढ़कर उसे पकड़ लेते हैं। नाग रुष्ट हो हाथ में दंशन देता है। तत्काल नागकुमार मूर्छित हो जाता है। महाराज नागधर्म चीख उठते हैं। सपेरा नाग को शीघ्रता से पिटारे में रख लेता है)

सपेरा- (सहमे हुए) राजन्! मैंने तो पहिले ही कहा था। अब मैं क्या करूँ?

(नागकुमार के मूर्छित होने का समाचार विद्युत गति

से महल में फैल जाता है। सेवकों के साथ महारानी नागदत्ता, ज्योत्स्ना आ जाती हैं)

नागदत्ता- आह! क्या हो गया मेरे लाल को? कितनी बार मना किया कि नागों से मत खेलाकर। नाग भी कोई खेलने की वस्तु है? परन्तु उसे तो जैसे व्यसन पड़ गया है। शीघ्र उपचार करें आर्य! (रुआंसी हो जाती है)

नागधर्म- (दीर्घ उच्छवास लेते हुए) अब क्या उपचार सम्भव है महिषी! सपेरे ने पहले ही आगाह कर दिया था।

नागदत्ता- (सपेरे से) तुम हमारे प्रतिबन्धित क्षेत्र में आये ही क्यों? किसने निमंत्रित किया था।

सपेरा- क्षमा करें राजमाता! मुझे ज्ञात नही था। मैं राजकुमार के विशेष आग्रह पर ही यहाँ आया था।

नागदत्ता- तो फिर इसका विष उतारो।

सपेरा- मैं मन्त्रों से अनभिज्ञ हूँ। मैंने आते ही राजकुमार से प्रार्थना की थी कि इस विषधर से क्रीड़ा की आकाँक्षा न करें। महाराज साक्षी हैं।

नागदत्ता- तुम्हारा ही नाग और तुम्हीं अनभिज्ञ। क्या सबके प्राण लेने को उसे लिए-लिए फिरते हो?

नागधर्म- सपेरे ने तो मना किया था देवी! वह निर्दोष है।

नागदत्ता- (क्रुद्ध हो) निर्दोष? नहीं, महान् अपराधी है। क्या यह अपराध नहीं कि जिसका विषहरण करने में असमर्थ है, उस विषधर को सार्वजनिक स्थानों में

प्रतिदिन ही क्रीड़ा करते हो, एक नाग न सही।

नागकुमार– (अनुनय-विनय करते हुए) नहीं पिताश्री! सपेरा उनकी भयंकरता की बार-बार घोषणा कर रहा है। मैं भी तो देखूँ वह कितना भयंकर है।

सपेरा– आप साक्षी हैं महाभाग! दैववश कुछ हो गया तो उपचार न हो सकेगा। मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। बिना आपकी आज्ञा के नाग बाहर नहीं निकालूँगा।

नागकुमार– पर मैं समर्थ हूँ। तुम चिन्ता न करो।

नागधर्म– निकाल दो नाग। राजकुमार अपनी निर्भयता के लिए प्रसिद्ध है।

नागकुमार– आप कितने अच्छे हैं पिताश्री!

(सपेरा पिटारे से नाग निकालता है। नाग आग्नेय नेत्रों से अपने प्रतिद्वन्द्वी को देखता है)

नागकुमार– (नाग को पकड़ते हुए) ओह! तुम्हारा यह रौद्र रूप? देखो अभी तुम्हें।

(नागकुमार अभिमान से बढ़कर उसे पकड़ लेते हैं। नाग रुष्ट हो हाथ में दंशन देता है। तत्काल नागकुमार मूर्छित हो जाता है। महाराज नागधर्म चीख उठते हैं। सपेरा नाग को शीघ्रता से पिटारे में रख लेता है)

सपेरा– (सहमे हुए) राजन्! मैंने तो पहिले ही कहा था। अब मैं क्या करूँ?

(नागकुमार के मूर्छित होने का समाचार विद्युत गति

से महल में फैल जाता है। सेवकों के साथ महारानी नागदत्ता, ज्योत्स्ना आ जाती हैं)

नागदत्ता– आह! क्या हो गया मेरे लाल को? कितनी बार मना किया कि नागों से मत खेलाकर। नाग भी कोई खेलने की वस्तु है? परन्तु उसे तो जैसे व्यसन पड़ गया है। शीघ्र उपचार करें आर्य! (रुआंसी हो जाती है)

नागधर्म– (दीर्घ उच्छ्वास लेते हुए) अब क्या उपचार सम्भव है महिषी! सपेरे ने पहले ही आगाह कर दिया था।

नागदत्ता– (सपेरे से) तुम हमारे प्रतिबन्धित क्षेत्र में आये ही क्यों? किसने निमंत्रित किया था।

सपेरा– क्षमा करें राजमाता! मुझे ज्ञात नही था। मैं राजकुमार के विशेष आग्रह पर ही यहाँ आया था।

नागदत्ता– तो फिर इसका विष उतारो।

सपेरा– मैं मन्त्रों से अनभिज्ञ हूँ। मैंने आते ही राजकुमार से प्रार्थना की थी कि इस विषधर से क्रीड़ा की आकाँक्षा न करें। महाराज साक्षी हैं।

नागदत्ता– तुम्हारा ही नाग और तुम्हीं अनभिज्ञ। क्या सबके प्राण लेने को उसे लिए-लिए फिरते हो?

नागधर्म– सपेरे ने तो मना किया था देवी! वह निर्दोष है।

नागदत्ता– (क्रुद्ध हो) निर्दोष? नहीं, महान् अपराधी है। क्या यह अपराध नहीं कि जिसका विषहरण करने में असमर्थ है, उस विषधर को सार्वजनिक स्थानों में

ले जाना क्या उपयुक्त है ?

नागधर्म- तुम्हारी भी बात सत्य है देवी! सपेरे! दण्ड स्वरूप क्यों न तुम्हारे प्राण हर लिए जाएँ।

सपेरा- (भयभीत होने का अभिनय करते हुए) महाराज! नाग को निकालने के पूर्व ही मैंने अपनी स्थिति स्पष्ट निवेदन कर दी थी। क्या यह न्याय है? कि आप अपने पुत्र की हठ का प्रतिशोध मुझसे लें? आपके आदेश पर ही मैंने नाग को बाहर निकाला था।

नागदत्ता- तुम धृष्ट हो सपेरे! एक मात्र पुत्र के प्राण हरण करके भी तुम्हें पश्चात्ताप नहीं होता! निर्लज्ज हो विवाद कर रहे हो ?

सपेरा- विवाद नहीं महारानी! इस नाग का मैंने कभी-भी प्रदर्शन नहीं किया। कुमार के मूर्छित होने का मुझे भी संताप है फिर भी आप जो दण्ड देंगी मुझे स्वीकार है।

ज्योत्स्ना- माँ श्री! स्थिति गम्भीर है। सपेरे को दण्ड देने से ज्येष्ठ भ्रात निर्विष तो होंगे नहीं; अतः क्रोध करना व्यर्थ है। यदि ये यत्न करें और सफल हो जाए तो मेरे भ्रात मुझे मिल जायेंगे।

नागधर्म- ज्योत्स्ना की सम्मति आदरणीय है। सपेरे! प्रयत्न कर देखो। नागकुमार के सचेत होने पर तुम्हें मन

चाहा पुरस्कार देकर हम तुम्हें सन्तुष्ट कर देंगे।

सपेरा- यद्यपि मुझे विश्वास नहीं है तथापि प्रयास अवश्य करूँगा परन्तु आप अपने वचनों पर दृढ़ रहेंगे, ऐसा मुझे विश्वास है।

नागधर्म- जीवन से अधिक बहुमूल्य और क्या है? हमें तो अपने प्रिय पुत्र की सुरक्षा, उसका जीवन ही इष्ट है।

(सपेरा मन ही मन मन्त्र वचन कहता है। उसके केवल अंग-प्रत्यंगों का संचालन हो रहा है। तत्पश्चात दंशन के स्थान पर चुटकी भर भस्म मलता है)

सपेरा- राजकुमार! उठें! आप स्वस्थ हो चुके हैं। माता-पिता के प्राणाधार! भगिनी के प्यारे भ्रात! आँखें खोलो। (किंचित् उच्च स्वर से) नागकुमार!

(नागकुमार भूमि पर लेटे ही आँखें खोलकर चारों ओर देखते हैं। सबमें हर्ष की लहर फैल जाती है)

नागदत्ता- (वक्ष से लगाते हुए) आयुष्मान! कुशल तो हैं?

नागकुमार- (उठकर बैठते हुए) माँ श्री! क्या मुझे नाग ने डस लिया था?

नागदत्ता- हाँ वत्स! सपेरे ने तुम्हें नव-जीवन प्रदान किया है।

नागकुमार- लाख-लाख बार धन्यवाद महोदय!

सपेरा- केवल धन्यवाद पर्याप्त नहीं है।

नागधर्म- हम वचनानुसार पुरस्कार भी देंगें। बोलो क्या चाहते हो?

सपेरा- (हँसकर) आपसे नहीं प्रजापालक! पुरस्कार

राजकुमार से ही लेंगे।

नागकुमार- कौन-सी बड़ी बात है। तुमने नव जीवन ही नहीं दिया वरन् चुनौती दे दंभ को गलित किया है। तुम मेरे परम उपकारी हो।

सपेरा- तुमने अपनी प्रतिज्ञा विस्मृत कर दी प्रियमित्र! नागक्रीड़ा में व्यस्त हो स्वर्णिम जीवन के अमूल्य क्षण खो रहे हो।

नागकुमार- (प्रिय मित्र सम्बोधन सुनकर पूर्व स्मरण करने की चेष्टा करते हुए) आह! तुम मित्र प्रियदत्त! सचमुच ही मैं भूल गया था। मैं उपकृत हुआ मित्र! इसका प्रतिदान किसी भी रूप में देना सर्वथा असम्भव है।

नागधर्म- निश्चित ही तुम सपेरे नहीं हो तो फिर कौन हो? तुम दोनों का वार्तालाप विचित्र-सा प्रतीत हो रहा है। कहीं तुम नागकुमार को भ्रमित तो नहीं कर रहे?

नागकुमार- नहीं पिताश्री! हम दोनों पूर्व जन्म के युगल भ्रात स्वर्ग में परम मित्र थे। पूर्व प्रतिज्ञानुसार मुझे अपने कर्त्तव्य का स्मरण कराने आये हैं स्वर्ग से।

नागदत्ता- (आश्चर्य युक्त हो) स्वर्ग के देव हैं!

नागकुमार- मित्र प्रियदत्त! दिखा दो न वह अपना प्रियदर्शी रूप।

सपेरा- (सपेरे का परिधान त्याग कर सुन्दर सलोना रूप प्रकट करते हुए) माँ श्री! यह प्राणी जन्म-

जन्मान्तरों से विविध वेशों को धारण करता हुआ कृत्रिम सौन्दर्य में मुग्ध हो आत्म सौन्दर्य को परखने की शक्ति भी खो बैठा है।

नागधर्म- सत्य कह रहे हो पर यह तो बताओ कि वह कौन-सी प्रतिज्ञा थी, जिसको स्मरण कराने के लिए आपको स्वर्ग से आने का कष्ट करना पड़ा?

नागकुमार- पिताश्री! हम दोनों ने प्रतिज्ञा की थी कि मानव जीवन धारणकर आत्म साधना करेंगे।

सपेरा- नागकुमार! अब मैं जाऊँगा। विश्वास है कि तुम प्रतिज्ञा को अविलम्ब मूर्त रूप दे अपने कार्य में संलग्न हो जाओगे।

नागकुमार- निस्संदेह ऐसा ही करूँगा। मुझे अपने कर्त्तव्य का बोध हो गया है। मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ कि तुम भी शीघ्र मत्युलोक में मानव बनकर अवतरण करो ताकि संसार दुःखों की परिसमाप्ति हो सके। तुम निश्चिंत हो अमरपुरी को लौटो।

सपेरा- शुभस्य शीघ्रं नागकुमार! तुम्हारी साधना निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर हो। (प्रस्थान)

नागकुमार- माँ-पिताश्री! मुझे घर-त्याग की अनुमति दें।

नागदत्ता- (चौधार आँसू बरसाती हुई) नहीं-नहीं प्रिय पुत्र! तुम अभी नहीं जा सकते। तुम्हारे विवाह के सुखद

स्वप्न हमें साकार करना है।

ज्योत्स्ना- बंधु! माँ श्री की आशाओं पर तुषारापात मत करो।

नागकुमार- ज्योत्स्ना! इस मिथ्या ममता का फल अनंत दुःख है। यथार्थ को पहिचानो। आत्म सिद्धि ही चरम लक्ष्य है। मुझे अपना कार्य करने दो।

नागदत्ता- यौवनकाल की समाप्ति के पश्चात् वनवास शोभा देता है।

नागकुमार- नहीं, अनुकूलता तो अभी है। मंगल कार्य में व्यवधान उचित नहीं है। यौवन व ज्ञान का अभी तक भयंकर अपव्यय हुआ है। समय रहते सतर्क हो जाना श्रेष्ठ है। सबसे अपने कृत्यों की क्षमा चाहता हूँ। (नागकुमार गृह-त्याग देते हैं। सब व्यथित हैं)

(पटाक्षेप)

दृश्य-द्वितीय

स्थान-सघन वृक्षों से घिरा वन का एक भाग।

(वन प्रान्त में दस्युदल लूटी हुई पूँजी का बँटवारा कर रहा है। दल का प्रमुख सूरदत्त है। शेष सहयोगी हैं-मोहनसिंह, हरीसिंह, लालसिंह, सुन्दरसिंह। सब शस्त्रों से सुसज्जित हैं)

सूरदत्त- लालसिंह! लूट में मिली स्वर्ण मुद्राओं की गणना हो गई?

लालसिंह- हो गई प्रधान जी! पाँच सौ हैं। लम्बी रकम हाथ लगी है।

सूरदत्त- हम पाँच व्यक्ति हैं। सौ-सौ हिस्से में आयेगी। आभूषण भी तो हैं सोने चाँदी के।

सुन्दरसिंह- स्वर्णाभूषण डेढ़सौ तोले के हैं। चाँदी अवश्य मन भर होगी।

सूरदत्त- इनके भी बराबर हिस्से बना लो। अरे! मोहनसिंह कहाँ है?

हरीसिंह- लघुशंका के लिए गया था, न जाने अभी तक क्यों नहीं लौटा!

(इसी समय मोहनसिंह नागकुमार मुनि को पकड़ कर लाता है। उनकी आँख पर पट्टी बंधी है। सूरदत्त उन्हें देखते ही नमस्कार करता है)

सूरदत्त- ये क्या किया मोहन? इनको क्यों पकड़ लाया? (क्रुद्ध हो) खोल पट्टी।

मोहनसिंह- हमारी कुशल नहीं है और आप इसे नमस्कार कर रहे हैं?

सूरदत्त- तू पहिले पट्टी खोल फिर बात कर।

मोहनसिंह- (पट्टी खोलते हुए) मुझे क्या? मैं खोल देता हूँ पर कान खोलकर सुन लो जी! ये इसी मार्ग से जा रहा था। इसने हमारी सारी बातें सुन ली हैं।

सूरदत्त- सुनने से क्या होता है पगले! ये भला अपनी क्या हानि करेंगे?

मोहनसिंह- नगर में हमारा गुप्त स्थान प्रगट हो गया तो क्या हम सुरक्षित रह पायेंगे?

सूरदत्त- इन्हें तुम्हारी बातों से कोई प्रयोजन नहीं। इन्हें इनके गंतव्य मार्ग पर छोड़ दो।

मोहनसिंह- छोड़ना मँहगा पड़ेगा प्रधान! इनको जीवन दान देना अपने समस्त सदस्यों के जीवन से खिलवाड़ करना है।

सूरदत्त- तुम भ्रम में हो मोहनसिंह!

हरिसिंह- मोहन का कथन सत्य है। आपकी यह सद्भावना हम सब को ले डूबेगी।

लालसिंह- मै भी मोहनसिंह से सहमत हूँ।

सूरदत्त- (आवेश में) क्या तुम सब यह चाहते हो कि इनकी हत्या कर दूँ? स्मरण रखो साधु की हत्या घोर पाप है। नरक में भी जगह नहीं मिलेगी।

सुन्दरसिंह- हत्या करना तो हमारा व्यवसाय है।

सूरदत्त- अरे मूर्खों! ये साधु हैं। इन्हें अपने तन से भी ममत्व नहीं तो अन्य से क्या प्रयोजन रखेंगे? इनकी ओर से आपत्ति की संभावना नहीं है। हत्या करने से केवल पाप ही हाथ लगेगा।

लालसिंह- तो आज आप पाप की परिभाषा बता रहे हैं। जैसे अभी तक हम पुण्य ही करते आ रहे हैं। सरदार जी! केवल आपके वचनों की श्रद्धा पर हम सब अपने जीवन की बलि नहीं चढ़ा सकते।

सूरदत्त- तब तुम मेरी बलि चढ़ाओ। यह स्मरण रखो कि मेरे निर्जीव होने के पश्चात् ही तुम इन पर हाथ उठा सकोगे।

लालसिंह- सरदार हठ बुरी होती है।

सूरदत्त- हठ नहीं, अनुचित हठ बुरी होती है। इनके द्वारा यदि तनिक भी क्षति हुई तो उसका अपराधी मैं होऊँगा और उसका प्रतिकार भी मैं ही करूँगा। क्या तुम्हें मेरे पुरुषार्थ पर शंका है?

मोहनसिंह- हमें पूर्ण आस्था है तब तो आपको प्रमुख मानते हैं।

सूरदत्त- तो फिर जाओ, इन्हें नगर-पथ पर सादर पहुँचा दो। (साधुराज से हाथ जोड़कर) साधु महाराज! हम अज्ञानियों से जो आपकी अवहेलना हो गई है, उसे क्षमा करें।

(मोहनसिंह आँख में पट्टी बाँधने लगता है।)

सूरदत्त- इसकी कोई आवश्यकता नहीं।

(मोहनसिंह साधु को लेकर चला जाता है। बँटवारे का कार्य पुनः प्रारम्भ हो जाता है। चंद समय पश्चात् अश्वों के चलने की आवाज आती है। सब चौकन्ने हो शीघ्रता से सामग्री छुपाने का प्रयास करते हैं)

हरिसिंह- नायक! साधु पर दया दिखलाने का तत्काल फल मिल गया। अवश्य कोई गुप्तचर विभाग का कर्मचारी होगा। उसके जाते ही कार्यवाही प्रारम्भ हो गई।

लालसिंह- यहाँ तो वह एक दम मौन रहा।

सुन्दरसिंह- भावुकता में किया गया कार्य कभी भी आपत्ति को

मोहनसिंह- छोड़ना मँहगा पड़ेगा प्रधान! इनको जीवन दान देना अपने समस्त सदस्यों के जीवन से खिलवाड़ करना है।

सूरदत्त- तुम भ्रम में हो मोहनसिंह!

हरिसिंह- मोहन का कथन सत्य है। आपकी यह सद्भावना हम सब को ले डूबेगी।

लालसिंह- मैं भी मोहनसिंह से सहमत हूँ।

सूरदत्त- (आवेश में) क्या तुम सब यह चाहते हो कि इनकी हत्या कर दूँ? स्मरण रखो साधु की हत्या घोर पाप है। नरक में भी जगह नहीं मिलेगी।

सुन्दरसिंह- हत्या करना तो हमारा व्यवसाय है।

सूरदत्त- अरे मूर्खों! ये साधु हैं। इन्हें अपने तन से भी ममत्व नहीं तो अन्य से क्या प्रयोजन रखेंगे? इनकी ओर से आपत्ति की संभावना नहीं है। हत्या करने से केवल पाप ही हाथ लगेगा।

लालसिंह- तो आज आप पाप की परिभाषा बता रहे हैं। जैसे अभी तक हम पुण्य ही करते आ रहे हैं। सरदार जी! केवल आपके वचनों की श्रद्धा पर हम सब अपने जीवन की बलि नहीं चढ़ा सकते।

सूरदत्त- तब तुम मेरी बलि चढ़ाओ। यह स्मरण रखो कि मेरे निर्जीव होने के पश्चात् ही तुम इन पर हाथ उठा सकोगे।

लालसिंह- सरदार हठ बुरी होती है।

सूरदत्त- हठ नहीं, अनुचित हठ बुरी होती है। इनके द्वारा यदि तनिक भी क्षति हुई तो उसका अपराधी मैं होऊँगा और उसका प्रतिकार भी मैं ही करूँगा। क्या तुम्हें मेरे पुरुषार्थ पर शंका है?

मोहनसिंह- हमें पूर्ण आस्था है तब तो आपको प्रमुख मानते हैं।

सूरदत्त- तो फिर जाओ, इन्हें नगर-पथ पर सादर पहुँचा दो। (साधुराज से हाथ जोड़कर) साधु महाराज! हम अज्ञानियों से जो आपकी अवहेलना हो गई है, उसे क्षमा करें।

(मोहनसिंह आँख में पट्टी बाँधने लगता है।)

सूरदत्त- इसकी कोई आवश्यकता नहीं।

(मोहनसिंह साधु को लेकर चला जाता है। बँटवारे का कार्य पुनः प्रारम्भ हो जाता है। चंद समय पश्चात् अश्वों के चलने की आवाज आती है। सब चौकन्ने हो शीघ्रता से सामग्री छुपाने का प्रयास करते हैं)

हरिसिंह- नायक! साधु पर दया दिखलाने का तत्काल फल मिल गया। अवश्य कोई गुप्तचर विभाग का कर्मचारी होगा। उसके जाते ही कार्यवाही प्रारम्भ हो गई।

लालसिंह- यहाँ तो वह एक दम मौन रहा।

सुन्दरसिंह- भावुकता में किया गया कार्य कभी भी आपत्ति को

मोहनसिंह- छोड़ना मँहगा पड़ेगा प्रधान! इनको जीवन दान देना अपने समस्त सदस्यों के जीवन से खिलवाड़ करना है।

सूरदत्त- तुम भ्रम में हो मोहनसिंह!

हरिसिंह- मोहन का कथन सत्य है। आपकी यह सद्भावना हम सब को ले डूबेगी।

लालसिंह- मै भी मोहनसिंह से सहमत हूँ।

सूरदत्त- (आवेश में) क्या तुम सब यह चाहते हो कि इनकी हत्या कर दूँ? स्मरण रखो साधु की हत्या घोर पाप है। नरक में भी जगह नहीं मिलेगी।

सुन्दरसिंह- हत्या करना तो हमारा व्यवसाय है।

सूरदत्त- अरे मूर्खों! ये साधु हैं। इन्हें अपने तन से भी ममत्व नहीं तो अन्य से क्या प्रयोजन रखेंगे? इनकी ओर से आपत्ति की संभावना नहीं है। हत्या करने से केवल पाप ही हाथ लगेगा।

लालसिंह- तो आज आप पाप की परिभाषा बता रहे हैं। जैसे अभी तक हम पुण्य ही करते आ रहे हैं। सरदार जी! केवल आपके वचनों की श्रद्धा पर हम सब अपने जीवन की बलि नहीं चढ़ा सकते।

सूरदत्त- तब तुम मेरी बलि चढ़ाओ। यह स्मरण रखो कि मेरे निर्जीव होने के पश्चात् ही तुम इन पर हाथ उठा सकोगे।

लालसिंह- सरदार हठ बुरी होती है।

सूरदत्त- हठ नहीं, अनुचित हठ बुरी होती है। इनके द्वारा यदि तनिक भी क्षति हुई तो उसका अपराधी मैं होऊँगा और उसका प्रतिकार भी मैं ही करूँगा। क्या तुम्हें मेरे पुरुषार्थ पर शंका है?

मोहनसिंह- हमें पूर्ण आस्था है तब तो आपको प्रमुख मानते हैं।

सूरदत्त- तो फिर जाओ, इन्हें नगर-पथ पर सादर पहुँचा दो। (साधुराज से हाथ जोड़कर) साधु महाराज! हम अज्ञानियों से जो आपकी अवहेलना हो गई है, उसे क्षमा करें।

(मोहनसिंह आँख में पट्टी बाँधने लगता है।)

सूरदत्त- इसकी कोई आवश्यकता नहीं।

(मोहनसिंह साधु को लेकर चला जाता है। बँटवारे का कार्य पुनः प्रारम्भ हो जाता है। चंद समय पश्चात् अश्वों के चलने की आवाज आती है। सब चौकन्ने हो शीघ्रता से सामग्री छुपाने का प्रयास करते हैं)

हरिसिंह- नायक! साधु पर दया दिखलाने का तत्काल फल मिल गया। अवश्य कोई गुप्तचर विभाग का कर्मचारी होगा। उसके जाते ही कार्यवाही प्रारम्भ हो गई।

लालसिंह- यहाँ तो वह एक दम मौन रहा।

सुन्दरसिंह- भावुकता में किया गया कार्य कभी भी आपत्ति को

आमंत्रण दे देता है।

सूरदत्त- साधु महाराज के प्रति आशंका निर्मूल है। विविध वेशों को धारण करना सरल है पर साधु वेश धारण नहीं किया जाता, हो जाता है। अंतरंग की निर्मल ज्योति का प्रकाश है वह । साधु की अपनी गरिमा, महिमा है।

सुन्दरसिंह- नग्न ही तो होना है। बालक तो यूँही नग्न फिरा करते हैं।

सूरदत्त- साधु तो अंतर से भी नग्न होते हैं, इसीलिए तो बाहर भी उन्हें परिधान की आवश्यकता नहीं रह जाती। बालक नग्न रहते हैं किन्तु बालकवत् बड़े नग्न नहीं रह सकते।

हरिसिंह- विवाद समाप्त कर शत्रु का सामना करने के लिए प्रस्तुत हो जाओ। पदचाप तीव्र हो चली है।

सूरदत्त- आप लोग शांत हो बैठें। आगंतुकों से मैं अकेला ही निपटूँगा। सौगन्ध है मुझे अपने बाहुबल की। जब तक तन में प्राण रहेंगे तब तक आप सबका बाल भी बाँका नहीं होने दूँगा।

लालसिंह- प्रधान जी! आप हमें अन्यथा न समझें। हम सब परस्पर सुख-दुःख के साथी हैं। साथ जियेंगे, साथ मरेंगे।

सूरदत्त- (जाते हुए संयत व आदेशात्मक स्वर में) नहीं, तुम

सब प्रतीक्षा करो।

हरिसिंह- प्रधान जी अपने प्राणों से खेल गए।

लालसिंह- वे किसी को साथ नहीं ले जाना चाहते। उन्होंने न आने का कठोर आदेश दे दिया।

सुन्दरसिंह- आदेश का उल्लंघन भी भीषण अपराध है। एक बार उन्हीं की रक्षा के अर्थ उनके मना करने पर मैं साथ चला गया; अतः हमारा सम्पूर्ण दस्युदल विपत्ति में पड़ गया था।

हरिसिंह- तभी उनकी आज्ञा टालने का साहस नहीं होता, उस समय उनकी निराली सूझ-बूझ से ही हम सब बच पाये थे।

लालसिंह- नहीं तो उसी दिन 'राम नाम सत्य' हो जाता।

(सूरदत्त राजमाता नागदत्ता एवं राजपुत्री को साथ लेकर आता है। उनके दो अंगरक्षक भी साथ में है। सबको घेरकर मोहनसिंह पीछे-पीछे आ रहा है)

सूरदत्त- हरिसिंह! शीघ्रता करो। रथ पर रखी सामग्री ले आओ।

(हरिसिंह, लालसिंह तत्काल कार्य में व्यस्त हो जाते हैं)

सुन्दरसिंह- (ज्योत्स्ना की ओर वासना युक्त दृष्टि से देखते हुए) अहा! कितनी सुन्दर सलोनी चिड़िया फंसी है नायक! (ऐसे वचन सुनते ही महारानी नागदत्ता व

आमंत्रण दे देता है।

सूरदत्त- साधु महाराज के प्रति आशंका निर्मूल है। विविध वेशों को धारण करना सरल है पर साधु वेश धारण नहीं किया जाता, हो जाता है। अंतरंग की निर्मल ज्योति का प्रकाश है वह। साधु की अपनी गरिमा, महिमा है।

सुन्दरसिंह- नग्न हों तो होना है। बालक तो यूँ ही नग्न फिरा करते हैं।

सूरदत्त- साधु तो अंतर से भी नग्न होते हैं, इसीलिए तो बाहर भी उन्हें परिधान की आवश्यकता नहीं रह जाती। बालक नग्न रहते हैं किन्तु बालकवत् बड़े नग्न नहीं रह सकते।

हरिसिंह- विवाद समाप्त कर शत्रु का सामना करने के लिए प्रस्तुत हो जाओ। पदचाप तीव्र हो चली है।

सूरदत्त- आप लोग शांत हो बैठें। आगंतुकों से मैं अकेला ही निपटूँगा। सौगन्ध है मुझे अपने बाहुबल की। जब तक तन में प्राण रहेंगे तब तक आप सबका बाल भी बाँका नहीं होने दूँगा।

लालसिंह- प्रधान जी! आप हमें अन्यथा न समझें। हम सब परस्पर सुख-दुःख के साथी हैं। साथ जियेंगे, साथ मरेंगे।

सूरदत्त- (जाते हुए संयत व आदेशात्मक स्वर में) नहीं, तुम

सब प्रतीक्षा करो।

हरिसिंह- प्रधान जी अपने प्राणों से खेल गए।

लालसिंह- वे किसी को साथ नहीं ले जाना चाहते। उन्होंने न आने का कठोर आदेश दे दिया।

सुन्दरसिंह- आदेश का उल्लंघन भी भीषण अपराध है। एक बार उन्हीं की रक्षा के अर्थ उनके मना करने पर मैं साथ चला गया; अतः हमारा सम्पूर्ण दस्युदल विपत्ति में पड़ गया था।

हरिसिंह- तभी उनकी आज्ञा टालने का साहस नहीं होता, उस समय उनकी निराली सूझ-बूझ से ही हम सब बच पाये थे।

लालसिंह- नहीं तो उसी दिन 'राम नाम सत्य' हो जाता।

(सूरदत्त राजमाता नागदत्ता एवं राजपुत्री को साथ लेकर आता है। उनके दो अंगरक्षक भी साथ में है। सबको घेरकर मोहनसिंह पीछे-पीछे आ रहा है)

सूरदत्त- हरिसिंह! शीघ्रता करो। रथ पर रखी सामग्री ले आओ।

(हरिसिंह, लालसिंह तत्काल कार्य में व्यस्त हो जाते हैं)

सुन्दरसिंह- (ज्योत्स्ना की ओर वासना युक्त दृष्टि से देखते हुए) अहा! कितनी सुन्दर सलोनी चिड़िया फंसी है नायक! (ऐसे वचन सुनते ही महारानी नागदत्ता व

आमंत्रण दे देता है।

सूरदत्त- साधु महाराज के प्रति आशंका निर्मूल है। विविध वेशों को धारण करना सरल है पर साधु वेश धारण नहीं किया जाता, हो जाता है। अंतरंग की निर्मल ज्योति का प्रकाश है वह । साधु की अपनी गरिमा, महिमा है।

सुन्दरसिंह- नग्न ही तो होना है। बालक तो यूँही नग्न फिरा करते हैं।

सूरदत्त- साधु तो अंतर से भी नग्न होते हैं, इसीलिए तो बाहर भी उन्हें परिधान की आवश्यकता नहीं रह जाती। बालक नग्न रहते हैं किन्तु बालकवत् बड़े नग्न नहीं रह सकते।

हरिसिंह- विवाद समाप्त कर शत्रु का सामना करने के लिए प्रस्तुत हो जाओ। पदचाप तीव्र हो चली है।

सूरदत्त- आप लोग शांत हो बैठें। आगंतुकों से मैं अकेला ही निपटूँगा। सौगन्ध है मुझे अपने बाहुबल की। जब तक तन में प्राण रहेंगे तब तक आप सबका बाल भी बाँका नहीं होने दूँगा।

लालसिंह- प्रधान जी! आप हमें अन्यथा न समझें। हम सब परस्पर सुख-दुःख के साथी हैं। साथ जियेंगे, साथ मरेंगे।

सूरदत्त- (जाते हुए संयत व आदेशात्मक स्वर में) नहीं, तुम सब प्रतीक्षा करो।

हरिसिंह- प्रधान जी अपने प्राणों से खेल गए।

लालसिंह- वे किसी को साथ नहीं ले जाना चाहते। उन्होंने न आने का कठोर आदेश दे दिया।

सुन्दरसिंह- आदेश का उल्लंघन भी भीषण अपराध है। एक बार उन्हीं की रक्षा के अर्थ उनके मना करने पर मैं साथ चला गया; अतः हमारा सम्पूर्ण दस्युदल विपत्ति में पड़ गया था।

हरिसिंह- तभी उनकी आज्ञा टालने का साहस नहीं होता, उस समय उनकी निराली सूझ-बूझ से ही हम सब बच पाये थे।

लालसिंह- नहीं तो उसी दिन 'राम नाम सत्य' हो जाता।

(सूरदत्त राजमाता नागदत्ता एवं राजपुत्री को साथ लेकर आता है। उनके दो अंगरक्षक भी साथ में है। सबको घेरकर मोहनसिंह पीछे-पीछे आ रहा है)

सूरदत्त- हरिसिंह! शीघ्रता करो। रथ पर रखी सामग्री ले आओ ।

(हरिसिंह, लालसिंह तत्काल कार्य में व्यस्त हो जाते हैं)

सुन्दरसिंह- (ज्योत्स्ना की ओर वासना युक्त दृष्टि से देखते हुए) अहा! कितनी सुन्दर सलोनी चिड़िया फंसी है नायक! (ऐसे वचन सुनते ही महारानी नागदत्ता व

राजकुमारी ज्योत्स्ना थर-थर काँपने लगती हैं)

सूरदत्त- (अत्यंत क्रुद्ध हो) सुन्दर! सावधान जिह्वा छेद दूँगा। तुम्हारी जिन आँखों में दुर्दमनीय वासना छलक आयी है, उन आँखों की कुशलता नहीं। क्या तुम अभी तक हमारे स्वभाव को नहीं पहचान सके?

सुन्दरसिंह- क्षमा करें नायक! भूल हुई।

सूरदत्त- फिर कभी ऐसी भूल न करना। हम दस्यु हैं। लुटेरे हैं, फिर भी चरित्र के धनी हैं। चिरसंचित पूँजी को तुम सहज ही लुटा देना चाहते हो। नारी मात्र में हमने पवित्र मातृत्व के ही दर्शन किये हैं। घृणित वासना से हम कोसों दूर हैं।

नागदत्ता- धन्य है वंधु ! तुम्हें धन्य है! मुझे प्रसन्नता हुई कि तुम सतीत्व का सम्मान करते हो।

सूरदत्त- माता! हमें अपने शील पर भी गर्व है। आप अपने को घर की भाँति यहाँ भी सुरक्षित समझें। आपको कोई क्षति नहीं होगी।

मोहनसिंह- माँ श्री! हमें सम्पत्ति से प्रयोजन है। अपने समस्त आभूषणों को दे दें।

नागदत्ता- आभूषण ले लो किन्तु अंधेरा घिरने के पूर्व कृपया नगर में लौट जाने देना। आयुष्मती ज्योत्स्ना! तुम भी आभूषण उतार दो।

सूरदत्त- नहीं, कन्या के आभरण हम स्पर्श नहीं करते।

ज्योत्स्ना- (दीर्घ उच्छ्वास लेते हुए) माँ श्री! आज का दिवस कितना अशुभ है।

नागदत्ता- आयुष्मती! किसे ज्ञात था कि हमारी सुखद यात्रा विपत्ति में परिवर्तित हो शोकग्रस्त हो जायेगी।

ज्योत्स्ना- माँ श्री! साधुराज तो इसी मार्ग से गये हैं। उन्होंने कोई संकेत नहीं दिया। नहीं तो हम इस आकस्मिक संकट से निश्चित ही बच जाते।

नागदत्ता- उन्हें ज्ञात न होगा पुत्री! वरन् वे अवश्य सावधान कर देते।

सूरदत्त- तुमने उनसे पूछा होता तो वे बतला देते।

नागदत्त- मैंने उन्हें बतलाया था कि मैं ज्योत्स्ना का विवाह करने कौशाम्बी नगरी जा रही हूँ। वन निरापद तो है?

सूरदत्त- तब उन्होंने क्या कहा?

नागदत्ता- प्रत्युत्तर में वे मौन रहे। उनके मौन को स्वीकृति समझ मैं बिना किसी आशंका के पुनः चल पड़ी। यहाँ तो आपत्ति मेरी प्रतीक्षा कर रही थी।

सूरदत्त- तो उन्होंने कुछ नहीं कहा?

ज्योत्स्ना- धर्मवृद्धि का आशीर्वाद दिया था।

सूरदत्त- देखा मोहनसिंह! हम बाँधने वालों से जिसप्रकार साधु महाराज निस्पृह थे, भक्ति करने वालों से भी उसीप्रकार उदासीन रहे। सत्य बात तो यह है कि

राजकुमारी ज्योत्स्ना थर-थर काँपने लगती हैं)

सूरदत्त- (अत्यंत क्रुद्ध हो) सुन्दर! सावधान जिह्वा छेद दूँगा। तुम्हारी जिन आँखों में दुर्दमनीय वासना छलक आयी है, उन आँखों की कुशलता नहीं। क्या तुम अभी तक हमारे स्वभाव को नहीं पहचान सके?

सुन्दरसिंह- क्षमा करें नायक! भूल हुई ।

सूरदत्त- फिर कभी ऐसी भूल न करना। हम दस्यु हैं। लुटेरे हैं, फिर भी चरित्र के धनी हैं। चिरसंचित पूँजी को तुम सहज ही लुटा देना चाहते हो। नारी मात्र में हमने पवित्र मातृत्व के ही दर्शन किये हैं। घृणित वासना से हम कोसों दूर हैं।

नागदत्ता- धन्य है बंधु ! तुम्हें धन्य है! मुझे प्रसन्नता हुई कि तुम सतीत्व का सम्मान करते हो।

सूरदत्त- माता! हमें अपने शील पर भी गर्व है। आप अपने को घर की भाँति यहाँ भी सुरक्षित समझें। आपकी कोई क्षति नहीं होगी।

मोहनसिंह- माँ श्री! हमें सम्पत्ति से प्रयोजन है। अपने समस्त आभूषणों को दे दें।

नागदत्ता- आभूषण ले लो किन्तु अंधेरा घिरने के पूर्व कृपया नगर में लौट जाने देना। आयुष्मती ज्योत्स्ना! तुम भी आभूषण उतार दो।

सूरदत्त- नहीं, कन्या के आभरण हम स्पर्श नहीं करते।

ज्योत्स्ना- (दीर्घ उच्छ्वास लेते हुए) माँ श्री! आज का दिवस कितना अशुभ है।

नागदत्ता- आयुष्मती! किसे ज्ञात था कि हमारी सुखद यात्रा विपत्ति में परिवर्तित हो शोकग्रस्त हो जायेगी।

ज्योत्स्ना- माँ श्री! साधुराज तो इसी मार्ग से गये हैं। उन्होंने कोई संकेत नहीं दिया। नहीं तो हम इस आकस्मिक संकट से निश्चित ही बच जाते।

नागदत्ता- उन्हें ज्ञात न होगा पुत्री! वरन् वे अवश्य सावधान कर देते।

सूरदत्त- तुमने उनसे पूछा होता तो वे बतला देते।

नागदत्त- मैंने उन्हें बतलाया था कि मैं ज्योत्स्ना का विवाह करने कौशाम्बी नगरी जा रही हूँ। वन निरापद तो है?

सूरदत्त- तब उन्होंने क्या कहा?

नागदत्ता- प्रत्युत्तर में वे मौन रहे। उनके मौन को स्वीकृति समझ मैं बिना किसी आशंका के पुनः चल पड़ी। यहाँ तो आपत्ति मेरी प्रतीक्षा कर रही थी।

सूरदत्त- तो उन्होंने कुछ नहीं कहा ?

ज्योत्स्ना- धर्मवृद्धि का आशीर्वाद दिया था।

सूरदत्त- देखा मोहनसिंह! हम बाँधने वालों से जिसप्रकार साधु महाराज निस्पृह थे, भक्ति करने वालों से भी उसीप्रकार उदासीन रहे। सत्य बात तो यह है कि

उन्हें न किसी से बैर है, न प्रीति।

नागदत्ता- तो क्या तुमने उन्हें पकड़ लिया था ?

सूरदत्त- हाँ, यह मोहनसिंह की अज्ञानता थी किन्तु हमने उन्हें ससम्मान छोड़ दिया और क्षमा याचना भी कर ली।

ज्योत्स्ना- तब तो उन्हें यह सब ज्ञात था माँ श्री ! फिर भी उन्होंने हमें सचेत नहीं किया।

नागदत्ता- न जाने उस दुष्ट ने किस जन्म की शत्रुता भंजाई है। तुम्हारा ज्येष्ठ भ्रात होते हुए भी वह कर्त्तव्य से विमुख हो गया। धिक्कार है मेरे मातृत्व को जो मेरी कुक्षि से ऐसा कुपुत्र उत्पन्न हुआ।

सूरदत्त- क्या साधु महाराज आपके पुत्र हैं ?

नागदत्ता- इकलौता लाड़ला था यह नागकुमार। जिसे गोद में लेकर मैं गर्व का अनुभव करती थी, आज उसको पुत्र कहते लज्जा आ रही है। उसने अपनी भगिनी का भी विचार नहीं किया।

सूरदत्त- ऐसा न कहे माँ श्री ! समस्त संबंध तन के हैं, आत्मा के नहीं। साधु तो महान तत्त्वदर्शी वीतरागी संत हैं। वे आत्मा को सुसंस्कृत बनाने में संलग्न कल्याणमय हैं। उन्हें तन और तन के कथित सम्बन्धियों से क्या प्रयोजन ?

नागदत्ता- नहीं, मैं उसे कभी क्षमा नहीं करूँगी।

सूरदत्त- तब आप अपने प्रति घोर अन्याय करेंगी। मैं तो कहता हूँ कि ऐसे पुत्र को जन्म देकर आप धन्य हो गयी हैं। (सामग्री लाते हुए लालसिंह व हरिसिंह से) तुम दोनों माँ श्री की सामग्री ज्यों की त्यों रथ में रखवा दो और ये जहाँ जाना चाहें वहाँ सुरक्षित पहुँचा दो। (महारानी नागदत्ता के पक्ष में हर्ष की लहर आ जाती है)

मोहनसिंह- क्या कह रहें हैं आप ? स्वस्थ तो हैं न ?

सूरदत्त- स्वस्थ होता तो ये निकृष्ट कर्म न होते, पर अब अवश्य होने जा रहा हूँ।

मोहनसिंह- आपकी बात हमारी बुद्धि से परे है। कृपया स्पष्ट करने का कष्ट करें।

सूरदत्त- तो सुनो मोहनसिंह ! जीवन भर किये गए अनर्थों का मैं प्रायश्चित्त करूँगा। साधु महाराज की माता हमारी भी पूज्य हैं; अतएव मेरा अनुरोध है इनकी सामग्री लौटा दो।

नागदत्ता- (हर्ष और आश्चर्य युक्त मुद्रा में) मैं ये क्या देख सुन रही हूँ ? क्या अग्नि भी शीतल हो जाती है ?

सूरदत्त- नहीं, जल में जो उष्णता आ गई थी, वह निकलने लगी है, इसमें क्या आश्चर्य ? आश्चर्य तो यह था कि अक्षय संपत्ति का स्वामी इन प्रपंचों में फंसा था।

साधु महाराज की वीतरागता का प्रभाव है कि मेरी आँखे खुल गई। आपके साथ किये गये दुर्व्यवहार के लिए हृदय से क्षमाप्रार्थी हूँ।

सुन्दरसिंह- प्रधानजी! आपके आदेश का पालन हो ही रहा है। फिर आप कहाँ चले ?

सूरदत्त- अमूल्य मानव जीवन को सार्थक करने। अभी साधु महाराज अधिक दूर नहीं गए होंगे! नव जीवन का प्रारम्भ करने के लिए गुरुमंत्र उन्हीं से लूँगा।

मोहनसिंह- हम सबको छोड़कर चले जायेंगे ?

सूरदत्त- संसार का विसर्जन करना है तो सबसे मुक्त होना पड़ेगा। जन-धन से मुक्त, क्रोधादि विकारों से मुक्त, सबसे मुक्त, बंधन सर्वथा हेय हैं।

मोहनसिंह- दस्युदल के लिए क्या आदेश है ?

सूरदत्त- अब क्या आदेश ? तुम स्वतंत्र हो। बन सके तो पूर्ण स्वतंत्रता की आराधना करो, सुख शांति तभी उपलब्ध होगी।

सुन्दरसिंह- अभी तक के सभी अभियानों में हम सब साथ रहे, क्या इस अभियान में साथ न ले चलोगे ?

सूरदत्त- मुक्ति का द्वार सबके लिए खुला है। सहर्ष चल सकते हो परन्तु यह अभिमान समस्त अभिमानों से निराला और अपूर्व है। खड्ग की तीक्ष्ण धार पर चलना है।

सुन्दरसिंह- अभ्यास असंभव को भी संभव बना देता है नायक! रुचि दिशा को तत्क्षण बदल देती है। दृष्टि के अनुसार सृष्टि की संरचना होने लगती है।

सूरदत्त- (प्रसन्न हो) अति सुन्दर, सुन्दरसिंह! 'यथा नाम तथा गुण' आओ चलें, आत्मा की सृष्टि बसायें, जो अनादिकाल से उजड़ी पड़ी थी।

लालसिंह- और यह लोगों की निधि क्या यों ही पड़ी रहेगी नायक!

सूरदत्त- अब इस नश्वर सम्पत्ति से क्या प्रयोजन लालसिंह! हमें तो अपनी उस शाश्वत निधि की सहसा सुधि आई है जो अब तक हमारे ही द्वारा उपेक्षित थी, आओ उसे सहेज लें।

सुन्दरसिंह- चलो नायक! अब इस जड़ द्रव्य से क्या मोह? 'राजा छोड़ी झोंपड़ी, जो चाहे सो लेय।'

(सबका प्रस्थान। महारानी नागदत्ता, ज्योत्स्ना विस्मित हो देखती रह जाती हैं)

(पटाक्षेप)

अवसान

पात्रानुक्रमणिका:

सम्राट बिंबसार श्रेणिक	- मगध के प्रतापी नरेश
कुणिक	- श्रेणिक का पुत्र
महारानी चेलना	- श्रेणिक की रानी एवं कुणिक की माता

दृश्य-प्रथम

समय- दिन का तृतीय प्रहर

स्थान- कारागृह का कक्ष

(सम्राट श्रेणिक कारागृह में बंदी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। द्वार पर प्रहरी सतर्क खड़ा है किन्तु सम्राट की शोचनीय अवस्था से वह भी दुःखी है)

श्रेणिक- (शोकाकुल हो) भाग्य का खेल! जिसकी वैजयंती दिग्दिगंत में फहरा रही थी, जिसके राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं हुआ (दीर्घ उच्छ्वास ले) आज उसी व्यक्ति को कारागृह में बंद कर समय चक्र मृत्यु की घड़ियाँ गिनने को बाध्य कर रहा है।

प्रहरी- (दुःखित हो) महाराज! दोपहरी इसी उधेड़ बुन में बीत गयी। आपने तनिक भी विश्राम नहीं किया।

श्रेणिक- (व्यंग से हँसते हुए) अब तो अहर्निश विश्राम है प्रहरी!

प्रहरी- आज तो आपने भोजन की थाली का भी स्पर्श नहीं किया महाराज! जल की कलशी भी ज्यों की त्यों रखी है।

श्रेणिक- अब अन्न-जल का भी त्याग कर दिया प्रहरी! इस जीवन से कोई मोह नहीं रहा।

प्रहरी- नहीं, नहीं ऐसा न कहें महाराज! मुझे दुःख होता है। हृदय फटा जाता है। क्या करूँ दासता है मेरे पास, कुंजी भी नहीं है, वरना प्राणों की बाजी लगाकर भी आपको यहाँ से मुक्त कर सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देता।

श्रेणिक- उत्तेजित न बनो प्रहरी! किसकी सुरक्षा? आत्मा तो सदैव सर्वत्र सुरक्षित ही है और उसका क्या हो सकता है?(नेपथ्य में कुणिक का अट्टहास सुनाई पड़ता है। प्रहरी भयभीत-सा सावधान हो खड़ा हो जाता है। कुणिक के आते ही वह सैनिक अभिवादन करता है)

कुणिक- (श्रेणिक से) क्यों प्रहरी से मिलकर क्या भागने की योजना बनाई जा रही है? (कड़क कर प्रहरी से) किसकी आज्ञा से बंदी से संभाषण कर रहे हो? (प्रहरी को नतमस्तक मौन देख) प्रहरी! हम जानना चाहते हैं कि तुम्हारी कौन-सी गुप्त वार्ता हो रही थी?

अवसान

पात्रानुक्रमणिका:

सम्राट बिंबसार श्रेणिक	– मगध के प्रतापी नरेश
कुणिक	– श्रेणिक का पुत्र
महारानी चेलना	– श्रेणिक की रानी एवं कुणिक की माता

दृश्य-प्रथम

समय- दिन का तृतीय प्रहर

स्थान- कारागृह का कक्ष

(सम्राट श्रेणिक कारागृह में बंदी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। द्वार पर प्रहरी सतर्क खड़ा है किन्तु सम्राट की शोचनीय अवस्था से वह भी दुःखी है)

श्रेणिक- (शोकाकुल हो) भाग्य का खेल! जिसकी वैजयंती दिग्‌दिगंत में फहरा रही थी, जिसके राज्य में सूर्य कभी अस्त नहीं हुआ (दीर्घ उच्छवास ले) आज उसी व्यक्ति को कारागृह में बंद कर समय चक्र मृत्यु की घड़ियाँ गिनने को बाध्य कर रहा है।

प्रहरी- (दुःखित हो) महाराज! दोपहरी इसी उधेड़ बुन में बीत गयी। आपने तनिक भी विश्राम नहीं किया।

श्रेणिक- (व्यंग से हँसते हुए) अब तो अहर्निश विश्राम है प्रहरी!

प्रहरी- आज तो आपने भोजन की थाली का भी स्पर्श नहीं किया महाराज! जल की कलशी भी ज्यों की त्यों रखी है।

श्रेणिक- अब अन्न-जल का भी त्याग कर दिया प्रहरी! इस जीवन से कोई मोह नहीं रहा।

प्रहरी- नहीं, नहीं ऐसा न कहें महाराज! मुझे दुःख होता है। हृदय फटा जाता है। क्या करूँ दासता है मेरे पास, कुंजी भी नहीं है, वरना प्राणों की बाजी लगाकर भी आपको यहाँ से मुक्त कर सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देता।

श्रेणिक- उत्तेजित न बनो प्रहरी! किसकी सुरक्षा? आत्मा तो सदैव सर्वत्र सुरक्षित ही है और उसका क्या हो सकता है?(नेपथ्य में कुणिक का अट्टहास सुनाई पड़ता है। प्रहरी भयभीत-सा सावधान हो खड़ा हो जाता है। कुणिक के आते ही वह सैनिक अभिवादन करता है)

कुणिक- (श्रेणिक से) क्यों प्रहरी से मिलकर क्या भागने की योजना बनाई जा रही है? (कड़क कर प्रहरी से) किसकी आज्ञा से बंदी से संभाषण कर रहे हो? (प्रहरी को नतमस्तक मौन देख) प्रहरी! हम जानना चाहते हैं कि तुम्हारी कौन-सी गुप्त वार्ता हो रही थी?

प्रहरी– (काँपता हुआ) मैंने कुछ नहीं कहा राजन्!

कुणिक– (कठोर स्वर में) सावधान! बंदी से वार्तालाप करने की भूल, भविष्य में पुनरावृत्ति न हो, समझे?

प्रहरी– 'जी' राजन्!

कुणिक– और तुम भी कान खोलकर सुन लो बंदी? यहाँ से भागने की चेष्टा की तो बोटी-बोटी उड़ा दी जायेगी।

श्रेणिक– जिसमें मन को तुष्टि मिले, वही करो कुणिक!

कुणिक– कुणिक नहीं, सम्राट कहो बंदी!

श्रेणिक– सम्राट (उद्विग्न हो) सम्राट का पिता अपने ही पुत्र का बंदी हो, क्या तुम्हारा व्यवहार उचित है?

कुणिक– भावुकता और राज धर्म साथ-साथ नहीं चल सकता।

श्रेणिक– हम पूछते हैं-क्या था हमारा अपराध, जो यह निःकृष्ट कार्य करने में तुम्हें तनिक भी संकोच नहीं हुआ?

कुणिक– (व्यंग्य से) राजनीति तुम्हीं से सीखी है पिता! मैंने सीखा कि पुत्र उत्पन्न होते ही उसे तुरन्त फिकवा देना चाहिए ताकि अन्तिम क्षण तक भोगेषणा की तृप्ति में बाधा न आने पावे।

श्रेणिक– (तिलमिला कर अशांत हो) कुणिक!

कुणिक– छिः कितनी घृणित वृत्ति थी तुम्हारी? पशु पक्षी भी

अपने शिशुओं को कितना दुलार करते हैं, एक तुम हो कि अपनी तृष्णा की ज्वाला में सद्यः प्रसूत बालक को झोंक दिया।

श्रेणिक– तुम्हारा आरोप मिथ्या है। हमारी न्यायप्रियता को कभी भी किसी ने चुनौती नहीं दी और आज तुमने मिथ्या आरोपण कर हमारे गौरव, हमारे आत्म सम्मान को नीलाम पर चढ़ा दिया।

कुणिक– अभी क्या हुआ है? अपराध की अस्वीकृति तुम्हें दंड से नहीं बचा सकेगी। मैं तुम्हें चैन से नहीं मरने दूँगा। चाहता तो शूली देकर तत्काल प्राण हरण कर लेता पर तिल-तिल जलाने में एक अनोखा आनन्द है।

श्रेणिक– आनन्द लूटने में कसर न रखना।

कुणिक– क्यों रखूँ..... तनिक वह वक्र भृकुटी तो दिखा दो महाराज! जिसे देख बड़े-बड़े योद्धा काँप जाते थे। कहाँ गया वह गर्व?

(श्रेणिक व्यथित हो मुँह फेर लेते हैं)

कुणिक– ओह! मुँह फेर लिया। (अट्टहास करता है) हः हः हः . प्रहरी!

प्रहरी– आदेश दें महाराज!

कुणिक– रात्रि को महाराज के समूचे कक्ष में हिमशिलाएँ

बिछवा दो ताकि महाराज शाँति की निद्रा ले सकें, उन्हें शांति चाहिए।

प्रहरी- ऐसी कड़कड़ाती शीत में हिमशिलाएँ ?

कुणिक- चुप रहो, आज्ञा का अविलम्ब पालन हो।

श्रेणिक- साथ ही व्यजन डुलाने का भी प्रबन्ध कर देना कुणिक!

कुणिक- अवश्य ऐसा ही होगा।

(कुणिक का प्रस्थान)

श्रेणिक- (स्वगत) दिन ढल रहा है, हमारी आयु भी निरन्तर ढल रही है पर अन्त ? कौन जाने कब हो ? मन में प्रकाश समाया है, ऊपर अमावस्या-सी अंधियारी सर्वत्र छा गई है। जीवन ज्योति जैसे अब बुझना ही चाहती है।

(महारानी चेलना का प्रवेश)

श्रेणिक- ओह! तुम कब आई चेलने!

चेलना- बस अभी चली आ रही हूँ स्वामिन्। (गला भर आता हैं) यह दुःखद संवाद सुनकर मैं पीहर में कैसे रह सकती थी ?

श्रेणिक- वहाँ सब कुशल तो है ?

चेलना- प्राणाधिक! आपका यह क्लेशजन्य समाचार पाकर

सब अत्यन्त व्यथित एवं आश्चर्य चकित हैं। आते ही मैं सीधी कुणिक के महल गई। उसे वहाँ न पाकर आपके पास चली आई प्राणेश! वह कौन-सा कारण था, जिसे पा वह इतना दुस्साहस कर सका ?

श्रेणिक- वह रहस्यात्मक है देवी! न समझने में ही कल्याण है।

चेलना- आह! मुझे क्या ज्ञात था कि नियति मेरे भाग्य में कुटिल लेख लिख रही है। काश! मैं यहीं होती।

श्रेणिक- तुम्हारे रहने से भी क्या होता प्रिये! जो घड़ी आ चुकी है, अनिवार्यतः आना ही थी, उसका टलना अशक्य था।

चेलना- फिर भी वह मेरे सामने इतना दुराग्रह न कर पाता महाराज!

श्रेणिक- इन विचारों से तुम्हें तुष्टि मिलती है तो हम बाधक नहीं बनेंगे देवी! अब हम महाराज नहीं रहे। यह सम्बोधन एक उपहासात्मक शब्द मात्र है। लगता है जैसे कटे पर नमक छिड़का जा रहा है।

चेलना- उपहास नहीं, यह सत्य है महाराज ! अस्ताचलगामी सूर्य क्या सूर्य नहीं कहलाता ?

श्रेणिक- तुम भूलती हो शुभे! उदित होता सूर्य ही नमस्कार का पात्र होता है।

भले ही जग नमस्कार न करे परन्तु क्या दिवाकर का

चेलना- स्वभाव नष्ट हुआ है? महाराज पिंजड़े का सिंह भी सिंह कहलाता है।

श्रेणिक- नख-दंत विहीन सिंह का मूल्यांकन नहीं होता चेलने!

चेलना- महाराज! आप महाराज थे और सदा सर्वदा महाराज ही रहेंगे। आप मेरे सर्वस्व हैं। कुणिक ने यह घृणित कार्य कर अपनी कीर्ति में घोर कलंक लगाया है।

श्रेणिक- कुणिक, कुणिक नहीं देवी! अजात शत्रु बन गया है।

चेलना- (क्रोधावेश में दांत पीसकर) अजात शत्रु! कुणिक भले ही सम्राट बन जाए, पर माँ का तो बेटा ही है। अभी उसने माँ की ममता के ही दर्शन किये हैं, अनुशासन की कठोरता भी भोगे।

श्रेणिक- ऐसी भूल न करना देवी! वह क्रूर है, उसके कार्य में हस्तक्षेप करना सर्प की बांबी में हाथ डालने के सदृश है।

चेलना- (उत्तेजित हो) मैं सर्प का फन कुचलना भी जानती हूँ महाराज! गर्भ में आते ही उसकी क्रूरता का आभास मिल चुका था। आपकी असावधानी कहूँ या संतान के प्रति प्रगाढ़ ममत्व जो ये दुर्दिन देखना पड़े।

श्रेणिक- अज्ञात भविष्य को परिवर्तित करने का दुस्साहस न कर मात्र वर्तमान को सुधारने का प्रयत्न ही सार्थक होता है शुभे! तुम विदुषी होकर भी विचलित हो रही हो।

चेलना- वर्तमान में ही संशोधन करना चाहती हूँ देव! तब से आज तक मैं यही करना चाहती थी पर आपकी सरलता मेरे सभी प्रयत्न विफल करती रही। आप ही बताए नाथ! गर्भवती का दोहला कि वह अपने पति का रक्त पीना चाहे, क्या शिशु की क्रूरवृत्ति का परिचायक नहीं है? क्या उस सद्य: प्रसूत बालक की कुचेष्टाएँ अर्थ हीन थीं?

श्रेणिक- होनहार अमिट है प्रिये! किसी के स्वभाव को परिवर्तित नहीं किया जा सकता।

चेलना- इसी कारण जन्म देते ही मैंने निर्ममत्व हो उससे सदा सदा के लिए सम्बन्ध-विच्छेद कर दूर एकान्त में रखवा दिया था परन्तु माता की ममता को बहुत पीछे छोड़ पिता के उमड़ते वात्सल्य ने आगे बढ़ उसे पुन: अपना लिया।

श्रेणिक- माता-पिता का यही कर्त्तव्य है शुभे! पालन-पोषण न करना बालक के प्रति घोर अन्याय है।

चेलना- उसी कर्त्तव्य का ही तो यह फल मिल रहा है।

श्रेणिक– ओह चेलने! प्रतीत होता है आज सूर्य शीतल होने लगा है, शीतल सुधाकर अग्निकण बरसाने लगा है (समझाते हुए) देवी कुणिक के जन्म के समय तुम्हारी विद्वत्ता में कदाचित् गांभीर्य न हो किन्तु अब उन विचारों की पुनरावृत्ति कर वृद्धावस्था में दूषण न लगाओ।

चेलना– (व्यथित हो विगलित स्वर में) महाराज!

श्रेणिक– हाँ शुभे! तुम्हीं कहती हो कि मन में दुर्भावों का उदय ही हिंसा का जन्मदाता है। हिंसक न बनो, वचनों के उठते बबूले आंतरिक भंवरों के द्योतक हैं देवी!

चेलना– आपका कथन यथार्थ होते हुए भी सामयिक नहीं है देव! शांत सरोवर में लघुतम कंकरी भी अनेक विशाल वलयों को जन्म दे देती है। अत्याचारों का सहना कायरता है। मैं अवश्यमेव उसका प्रतिकार करूँगी।

श्रेणिक– इस प्रतिकार का फल निश्चित ही घातक होगा शुभे! वह तुमसे भी दुर्व्यवहार करेगा।

चेलना– तो वह अधिक उचित भी होगा। अपराधी मैं हूँ। दण्ड भी मुझे मिलना चाहिए। मैं उसके भ्रम का निवारण करूँगी।

श्रेणिक– (अत्यन्त अशांत मन से) नहीं, नहीं ऐसी भूल

कदाचित् न करना, सिंहासन उन्माद मानवोचित कर्त्तव्यों को दर्प के पैरों से कुचल देता है।

चेलना– यह भी हमारी दूसरी भूल का दुष्परिणाम है। उत्तराधिकारी ज्येष्ठ पुत्र चिरंजीव अभयकुमार जी सर्वथा योग्य शासक होते किन्तु कुणिक के प्रति आपका विशेष आकर्षण देख उन्होंने स्वयमेव अपना अधिकार छोड़ दिया।

श्रेणिक– सचमुच अभय देव पुरुष हैं शुभे!

चेलना– इसलिये कुणिक की जननी होते हुए भी मैं अभय के पक्ष में थी। जीजी नन्दिनी ने भी अपने अद्भुत धैर्य व सहिष्णुता का परिचय दिया।

श्रेणिक– त्यागवृत्ति से सन्तोष मिलता है। मृगमरीचिका मानव को देवत्व तो प्राप्त नहीं करने देती अपितु मनुष्यत्व से भी नीचे गिरा पशु बना देती है। हमारा आचरण विचारों से समन्वय नहीं कर सका।

चेलना– कोई भी उपदेश मुझे अपने कर्त्तव्य से च्युत नहीं कर सकता। आप मुक्त होंगे आज ही अभी, या फिर चेलना अपना मुख कभी नहीं दिखायगी। (शीघ्रता से प्रस्थान)

श्रेणिक– (उच्च स्वर में) चेलना! सुनो चेलने!... चली गई, पतिव्रता नारी मौन नहीं रह सकती। अनहोनी

आशंका से मन काँप रहा है एवं होनी अमिट है। (चिन्तित हो कक्ष में विचरण करते हुए) पागल यह व्याकुलता कैसी? तन के लिये? जिसमें चेतना शक्ति नहीं? आत्मा तो उससे एक दम पृथक है, एकाकी है। अनिष्ट असंभव है।......जाने कैसी अज्ञानता है जो उभर-उभर कर हमें विचलित कर रही है। बुद्धि भ्रष्ट होने से ज्ञान चंचल हो रहा है। कदाचित् कल का उदित होता हुआ सूर्य हम नहीं देख सकेंगे।

प्रहरी- ऐसा न कहें महाराज! महारानी माँ अवश्य आप की मुक्ति का उपाय करेंगी।

श्रेणिक- तन की मुक्ति नहीं है प्रहरी! हमारा अभीष्ट तो इस नश्वर संसार के जन्म-मरण की परिधि के पार है।

प्रहरी- महाराज! आपके पास अलौकिक ज्ञान का विशाल भंडार है, उसी में से ये रत्नकण निःसृत होते रहते हैं।

श्रेणिक- आज उस भण्डार की कुंजी कहीं खो गई है? ज्ञान की लौ टिमटिमा रही है पर मन की चंचलता के कारण हम उसे खोजने में असमर्थ हो गये हैं।

(रात्रि हो गई है। एक सेवक द्वार पर दीपक रखकर चला जाता है)

प्रहरी- प्रकाश हो गया महाराज!

श्रेणिक- पागल! इस क्षीण प्रकाश से क्या होगा? हमारे ज्ञान का अमिट आलोक विलुप्त हो रहा है। यद्यपि श्रद्धा बलवती है। ओह! हम भटक गये.........भटक गये प्रहरी।

कुणिक- (नेपथ्य से) पिता श्री! पिता श्री!

श्रेणिक- (व्यग्र हो) लो फिर आ पहुँचा। इस काल कोठरी में भी एकान्त नहीं मिल पाता। नितप्रति व्याघात होते हैं। उसकी वाणी में व्यंग्य बोलता है। चेलने! तुमने कुणिक के पास जाकर अच्छा नहीं किया, कहीं पाषाण पर भी कोमल तृण उगे हैं? नहीं, नहीं, इस जीवन से मरण अधिक श्रेष्ठ है। यह मानसिक यंत्रणा अब नहीं सही जाती। कौन जाने किस जन्म का प्रतिशोध ले रहा है? यातना....... अपमान......... यातना....... अपमान!

कुणिक- (नेपथ्य से निकट आते हुये) पिता श्री! आज निश्चित ही आपको शांति मिलेगी। शांति......... पूर्ण शांति......!

श्रेणिक- अब और कौन-सी क्रूरता रह गयी है कुणिक? तेरी दी हुई शांति मिले इसके पूर्व ही शांत हुये जाते हैं। भले ही सुन्दर जीवन का अन्त असुन्दर हो।

कुणिक- (शीघ्रता से आकर) तात् आपके दुःखों का अन्त आ गया। (स्वयं ताला खोलता है)

श्रेणिक- नहीं, नहीं, अब जीवन.... (अनायास मूर्छित होकर गिर पड़ते हैं)

(इस अप्रत्याशित घटना से कुणिक हतप्रभ हो त्वरित गति से कक्ष में प्रवेश करता है। साथ में आये अनुचर भी प्रविष्ट होते हैं। एक सेवक मशाल लिये है। उसके प्रकाश में दिखाई देता है कि श्रेणिक के मस्तक से रक्त धारा फूट पड़ी है। वे अचेत हो गये हैं। वह व्रण हाथ से दवा लेता है)

कुणिक- (रोते हुए) हे तात्! यह क्या हो गया? दौड़ो कोई, शीघ्रता से वस्त्र लाओ, रक्त वहा जा रहा है। जल भी लाओ, तात् अचेत हो गये हैं। दंडक! तुम शीघ्रातिशीघ्र राज चिकित्सक बुलाओ। तात्!

(अनुचर वस्त्र लाते हैं। कुणिक व्रण पर वस्त्र रखकर पुनः दबा लेता है ताकि रक्त प्रवाह को रोका जा सके। दंडक भी चिकित्सक को लेकर प्रवेश करता है)

चिकित्सक- (प्रवेश करते ही) मुझे स्मरण किया राजन्! अरे! रक्त प्रवाहित है? क्या हो गया? (परीक्षण करते हैं)

कुणिक- (दयनीय स्वर में) शीघ्र उपचार करें। रक्त का स्रोत फूट पड़ा है।

चिकित्सक- (परीक्षण कर व्यथित हो) दुःख है राजन्! सम्राट हमारे उपचार से मुक्त हो गये हैं। पिंजड़े का पंछी उड़ चुका है।

कुणिक- क्या कह रहे हैं आप? (रुदन करते हुए) मेरे प्यारे पिता! आह.....! तात्! मेरे कारण तुम्हारा ऐसा करुण अन्त हुआ! मैं दुष्ट हूँ, क्रूर हूँ।

चिकित्सक- धैर्य धारण करें राजन्! अब हम निरुपाय हैं।

कुणिक- (विगलित स्वर में) धैर्य ! नहीं, मैं पितृ-घाती हूँ। मैंने उन्हें कारागार में डाल जघन्य अपराध किया है। (दीर्घ उच्छ्वास लेते हुए) मेरी नृशंसता से पीड़ित हो उन जैसे साधु पुरुष ने प्राण विसर्जन कर दिये। आह!

चेलना- (नेपथ्य से) विलम्ब क्यों कर रहे हो कुणिक! पिताश्री को मुक्त करने का, तुमने मुझे वचन दिया है न? आश्वासन मौखिक न हो।

कुणिक- (जोर से फफक कर रो पड़ता है) माँ! वचन निर्वाह न कर सका माँ!

चेलना- (शीघ्रता से प्रवेश कर) आह! प्राणाधिक यह क्या हो गया तुम्हें? (सिर गोद में रख) अश्रुपूरित नयनों एवं व्यथित हृदय से पिता के प्राण लेकर ही क्या तुम्हें तृप्ति मिली कुणिक?

कुणिक- नहीं माँ श्री! मुझे अब अन्यथा न समझें। तुम्हारे आदेश का ही पालन करने आया था परन्तु दुर्भाग्य! कि मेरे आने के पूर्व ही वे संसार से विदा हो गये। साक्षी है ये भित्तियाँ! ये धरा और विशाल आकाश। कक्ष में मेरे प्रविष्ट होने के पूर्व वे अनायास गिर पड़े। उनका मस्तक भित्ति से टकरा गया!

प्रहरी- मैंने देखा, सम्राट ने महाराज की आवाज सुनते ही अपना बचाव करने भागे थे। वे कष्टों से घबरा गये थे।

चेलना- (अत्यंत व्यथित हो) यह क्या कर लिया? आह! स्वामी! तुमने जीवन भर की अच्छाइयों पर मुट्ठी भर धूल फेंक दी। कैसा अनर्थ कर डाला नाथ! तुम्हारे ही कारण कुणिक।

कुणिक- (अत्यन्त विनीत हो) मुझे क्षमा करो माँ! क्षमा करो।

चेलना- (गहरी सांस लेकर) पुत्र माता-पिता का हृदय सदैव ही सन्तान को क्षमा करता आया है किन्तु तुमने अविवेक से जो बीज वपन कर दिया है, उसका क्या होगा कुणिक?

कुणिक- (दु:ख भरे स्वर में) मुझसे घोर अपराध हो गया है माँ! पितृघाती हूँ मैं, हा तात्!

चेलना- मैं नहीं समझ पा रही हूँ पुत्र! कि तुमने किस जन्म का प्रतिशोध लिया है? तुम्हारे वयस्क होते ही उन्होंने तुम्हें राज्य सौंप दिया। प्रतिभाशाली पुत्रों के होते हुए भी उनके समस्त वात्सल्य के केन्द्र तुम थे और तुम्हारा यह दुर्व्यवहार!

कुणिक- (दु:खित हो पश्चात्ताप के स्वर में)..... माँ मुझे दण्ड दो माँ!........अपने हाथों से मेरे प्राणों का अन्त कर दो।

चेलना- इससे कोई लाभ नहीं होगा पुत्र..........यह दुष्कृत्य करने के पूर्व मुझसे तनिक पूछ तो लिया होता। (दीर्घोच्छ्वास ले) पर होनी अमिट है।

चिकित्सक- राजमाता! धैर्य के अतिरिक्त अब कोई उपाय नहीं। सम्राट का अवसान कदाचित् ऐसा ही होना था। हम सब उनकी सद्गति हेतु प्रभु से प्रार्थना करें।

चेलना- विधि का वैचित्र्य! एक तेजस्वी सम्राट का इतना करुण अवसान! मोही अज्ञानी आत्मा अपने चिरंजीवी स्वभाव की ओर ध्यान न देने के कारण संसार का कुफल भोगता है! हमें अपनी भूल का संशोधन तुरन्त कर लेना उचित है।

चिकित्सक- उठें राजन्! सम्राट की अन्त्येष्टि की व्यवस्था करें।

———•★•———

षड्यन्त्र

पात्रानुक्रमणिका:

मिस्टर सूर्य	- राज्य प्रमुख
सुभद्रा	- सूर्य की पत्नी
जयप्रकाश	- राज्यमंत्री
डॉ. लाल	- मि. सूर्य के परिवार चिकित्सक
अतुल कुमार	- पुलिस अधिकारी
सोहन जी	- प्रमुख पत्रकार

(डॉ. नाग, परिचारिकायें, अंगरक्षक इत्यादि)

दृश्य-प्रथम

समय- साँध्यकाल का झुटपुटा

स्थान- राज्य प्रमुख के बंगले का बाहरी दरवाजा।

(एक पुलिस अधिकारी सतर्क खड़ा है। उसके हाथ में छोटा सा रिवाल्वर है। शायद वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा है। एक सम्भ्रान्त नागरिक बाहर आते हुए दिखाई देते हैं। उन्हें आते देख कर अधिकारी थोड़ा पीछे हट जाता है ताकि आगन्तुक उसे देख न ले परन्तु डॉक्टर की दृष्टि से वह बच नहीं पाता। डॉक्टर भी देखकर लापरवाही से आगे बढ़ जाता है। उनके जाने के पश्चात् पुलिस अधिकारी चैन की साँस लेता है)

पुलिस अधिकारी- जरा-जरा से काम में भी कितनी बाधायें आती हैं। अच्छा हुआ डॉक्टर चला गया। बुड्ढ़ा बड़ा घाघ है।

(पुनः भीतर की ओर कान लगाकर खड़ा हो जाता है। थोड़ी ही देर में साधूराम नामक व्यक्ति गेरुआ वस्त्र पहने बाहर से आता है। दोनों एक दूसरे को देखकर मुस्कराते हैं)

पुलिस अधिकारी- डरना नहीं साधूराम!

साधूराम- अजी डरना कैसा? हम साधु सन्तों से डर भी भी डरता है।

पुलिस अधिकारी- शाबाश साधूराम! शाबाश!

साधूराम- साधूराम जिस काम को ठानता है, वह करके ही छोड़ता है। बस एक दो मिनट में काम समाप्त। (धीरे-धीरे वस्त्र के भीतर से रिवाल्वर निकालकर बतलाता है) देखो बिल्कुल तैयार है।

(शीघ्रता से भीतर चला जाता है। पुलिस अधिकारी चौकन्ना हो जाता है। दो मिनिट पश्चात भीतर गोली चलने की आवाज के साथ चीख सुनाई देती है। पुलिस अधिकारी किसी के भागने की प्रतीक्षा करता हुआ सावधान हो जाता है। वह रिवाल्वर निकाल लेता है। इतने में दूसरी ओर से पुनः गोली

चलने की आवाज होती है, साथ ही जैसे कोई गिर पड़ता है। पकड़ लो भागने न पाये, अब क्या भागेगा, की कई आवाजें गूँज उठती हैं)

पुलिस अधिकारी- लगता है जैसे साधूराम गोली खाकर गिर पड़ा है। (व्यग्रता से भीतर की ओर झाँकता है परन्तु दिखाई कुछ नहीं देता) और सारा प्लान फेल हुआ जा रहा है। साधूराम अपना काम कर चुका किन्तु पकड़ लिया गया है। (विचारों की मुद्रा में) अब मुझे एक क्षण भी नहीं रुकना चाहिए। कहीं वह भण्डा-फोड़ न कर दे। (कुछ सोचकर चुटकी बजाता है। शीघ्रता से प्रस्थान)

(परदा उठता है। बंगले के भीतर का दृश्य दिखाई देता है। मिस्टर सूर्य पड़े हैं। श्रीमती सूर्य रो रही हैं। सूर्य के अंग रक्षक घेरे हुए खड़े हैं। पुलिस गाड़ी का हार्न सुनाई देता है। वही पुलिस अधिकारी अन्य पुलिस मैनों के साथ आते हैं और अभियुक्त साधूराम को उठाकर चले जाते हैं। डॉ. लाल आते हुये दिखाई देते हैं। वे गम्भीर हैं। तत्क्षण स्टैथिस्कोप से वे सूर्य के परीक्षण में लग जाते हैं। सिर से खून बह रहा है। परीक्षण समाप्त होते ही वे निराश हो सिर हिला देते हैं। पास रुआँसी पत्नी सुभद्रा फफक कर रो पड़ती है)

सुभद्रा- (रोते हुए) नहीं, नहीं डॉक्टर! ऐसा न कहें।

कैसे भी बचाइये। मैं अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दूँगी। बचाइये डॉक्टर! बचाइये।

डॉ. लाल- मुझे दुःख है सुभद्रा बहिन! अब कुछ भी नहीं हो सकता। प्राण निकल चुके हैं, शांति से काम लें, धैर्य धारण करें।

सुभद्रा- धैर्य! ऐसे असामयिक मृत्यु पर धैर्य! मेरे पति ने अपने कार्यकाल में जनहित के कितने कार्य किये। क्या इसीलिये कि इनकी हत्या की जाय?

डॉ. लाल- बड़ा अनर्थ हो गया। अभी-अभी मुश्किल से एक घण्टा भी न हुआ होगा, विशाल अस्पताल के विषय में मुझसे चर्चा हुई थी। ओह! शिलान्यास कर उन्होंने जिस महान कार्य का बीज वपन किया, अपने जीवन में वे उसे पूरा न देख सके। छिः यह कायराना हमला!

सुभद्रा- मैं क्या करूँ डॉक्टर! आप जरा कोशिश करिये, शायद कहीं प्राण अटके हों।

डॉ. लाल- ऐसा होता तब तो बहुत ही अच्छा होता। पर बहुत बुरा हुआ है। यदि जरा भी साँस रहती तो हम उपचार में कोर कसर न उठा रखते किन्तु हत्यारे की गोली ने तत्क्षण प्राण ले लिये। जब मैं गया था तब बिल्कुल अच्छा छोड़कर गया

चलने की आवाज होती है, साथ ही जैसे कोई गिर पड़ता है। पकड़ लो भागने न पाये, अब क्या भागेगा, की कई आवाजें गूँज उठती हैं)

पुलिस अधिकारी- लगता है जैसे साधूराम गोली खाकर गिर पड़ा है। (व्यग्रता से भीतर की ओर झाँकता है परन्तु दिखाई कुछ नहीं देता) और सारा प्लान फेल हुआ जा रहा है। साधूराम अपना काम कर चुका किन्तु पकड़ लिया गया है। (विचारों की मुद्रा में) अब मुझे एक क्षण भी नहीं रुकना चाहिए। कहीं वह भण्डा-फोड़ न कर दे। (कुछ सोचकर चुटकी बजाता है। शीघ्रता से प्रस्थान)

(परदा उठता है। बंगले के भीतर का दृश्य दिखाई देता है। मिस्टर सूर्य पड़े हैं। श्रीमती सूर्य रो रही हैं। सूर्य के अंग रक्षक घेरे हुए खड़े हैं। पुलिस गाड़ी का हार्न सुनाई देता है। वही पुलिस अधिकारी अन्य पुलिस मैनों के साथ आते हैं और अभियुक्त साधूराम को उठाकर चले जाते हैं। डॉ. लाल आते हुये दिखाई देते हैं। वे गम्भीर हैं। तत्क्षण स्टैथिस्कोप से वे सूर्य के परीक्षण में लग जाते हैं। सिर से खून बह रहा है। परीक्षण समाप्त होते ही वे निराश हो सिर हिला देते हैं। पास रुआँसी पत्नी सुभद्रा फफक कर रो पड़ती है)

सुभद्रा- (रोते हुए) नहीं, नहीं डॉक्टर! ऐसा न कहें। कैसे भी बचाइये। मैं अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दूँगी। बचाइये डॉक्टर! बचाइये।

डॉ. लाल- मुझे दुःख है सुभद्रा बहिन! अब कुछ भी नहीं हो सकता। प्राण निकल चुके हैं, शांति से काम लें, धैर्य धारण करें।

सुभद्रा- धैर्य! ऐसे असामयिक मृत्यु पर धैर्य! मेरे पति ने अपने कार्यकाल में जनहित के कितने कार्य किये। क्या इसीलिये कि इनकी हत्या की जाय?

डॉ. लाल- बड़ा अनर्थ हो गया। अभी-अभी मुश्किल से एक घण्टा भी न हुआ होगा, विशाल अस्पताल के विषय में मुझसे चर्चा हुई थी। ओह! शिलान्यास कर उन्होंने जिस महान कार्य का बीज वपन किया, अपने जीवन में वे उसे पूरा न देख सके। छिः यह कायराना हमला!

सुभद्रा- मैं क्या करूँ डॉक्टर! आप जरा कोशिश करिये, शायद कहीं प्राण अटके हों।

डॉ. लाल- ऐसा होता तब तो बहुत ही अच्छा होता। पर बहुत बुरा हुआ है। यदि जरा भी साँस रहती तो हम उपचार में कोर कसर न उठा रखते किन्तु हत्यारे की गोली ने तत्क्षण प्राण ले लिये। जब मैं गया था तब बिल्कुल अच्छा छोड़कर गया

था। वे मुझे बाहर तक पहुँचाने आये थे। उनका हँसता हुआ चेहरा अभी भी आँखों में झूल रहा है।

सुभद्रा- आपको पहुँचाने आये फिर वे भीतर नहीं जा पाये डॉक्टर! मैं खाने की मेज पर उनका इन्तजार कर रही थी।

डॉ. लाल- मेरे जाते ही क्या यह काँड हो गया था?

सुभद्रा - हाँ थोड़ी देर वे लॉन का निरीक्षण करने लगे। बस वहीं हत्यारे ने गोली मार दी। मैं दौड़ी यहाँ आकर देखा तो होश उड़ गये। (रोती है) डॉक्टर! मेरा जीवन साथी सदा के लिये मुझसे छूट गया।

डॉ. लाल- बहिनजी! आज का मानव, जन-कल्याण करने का यही पुरस्कार दे रहा है।

सुभद्रा- मुझे भी गोली लग गयी होती तो कितना अच्छा होता। (सुभद्रा लाश पर सिर पटक-पटक कर रो पड़ती है। हिचकियों-सिसकियों के बीच परदा गिर जाता है। डॉ. लाल चले जाते हैं। पुनः परदा उठता है। डॉ. लाल पुनः आते हैं। वहाँ बाहर एक प्रहरी बैठा है। कमरे में चार छः कुर्सियाँ पड़ी हैं)

डॉ. लाल- (अंगरक्षक से) सुभद्रा बहिन को बुलाओ आवश्यक कार्य है।

(अंगरक्षक तुरन्त मिसेज सूर्य को बुला लाता है। उनकी आँखे रोते-रोते लाल हो गयी हैं)

डॉ. लाल- बहिन जी धैर्य से काम लें। मैं आपसे कुछ आवश्यक चर्चा करने आया हूँ।

सुभद्रा- कहिये, मैं तो अब लुट चुकी हूँ। (सोफासैट कुर्सियाँ हैं, वहीं दोनों बैठ जाते हैं)

डॉ. लाल- मिस्टर सूर्य की हत्या में बड़े भारी षड्यंत्र की गन्ध आ रही है।

सुभद्रा - सो तो है ही। विशेष लोकप्रियता के कारण भी वे किन्हीं-किन्हीं लोगों की आँखों में खटकने लगे थे।

डॉ. लाल- हमें इस घटना की तह में जाना होगा। निकट भविष्य में कुछ और भी अनर्थ घट सकता है।

सुभद्रा- (उच्छ्वास लेकर) इससे अधिक और क्या अनर्थ होगा? अच्छा हो हत्यारे मेरे भी प्राण ले लें। अब मैं जी कर भी क्या करूँगी।

डॉ. लाल- जो हो गया उसमें हम कुछ भी कर सकने में नितांत असमर्थ हैं पर अब हम सावधान रहेंगे। आपकी लोकप्रियता भी मि. सूर्य से कम नहीं हैं। शासन देश के शत्रुओं के हाथ में पहुँच जायेगा। मि. सूर्य के अभी तक के समस्त

किये कराये पर पानी फिर जायेगा। हमें उनके अधूरे सपने पूरे करने हैं।

सुभद्रा- मुझे किसी बात में रुचि नहीं रही डॉक्टर! मैं क्या कर सकती हूँ।

डॉ. लाल- अपने लिये नहीं तो जनता के लिये आपको जीवित रहना होगा। मैं हत्या का सुराख लगा रहा हूँ, इसीलिये मैं यहाँ से तुरन्त चला गया था। मेरा जाना सार्थक हुआ।

सुभद्रा- मतलब ?

डॉ. लाल- कुछ तथ्यों की जानकारी मिली है। प्रसिद्ध पत्रकार मि. सोहन यहाँ पहुँचना ही चाहते हैं। उनसे भी कुछ प्रकाश पड़ेगा।

सुभद्रा- आपकी उनसे भेंट हुई ?

डॉ. लाल- हाँ! अभी फोन पर उन्होंने कहा कि वहीं आ रहा हूँ। चूँकि फोन पर ऐसी वार्ता खतरे से खाली नहीं हैं, अस्तु आपके ही बंगले पर चर्चा करना निश्चित किया है।

सुभद्रा- मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

(पत्रकार सोहन जी का प्रवेश)

सोहनजी- (प्रवेश कर) बड़ा बुरा हुआ मैडम! हमारी आप के साथ पूरी सहानुभूति है। इतने अंग- रक्षकों के होते हुये हत्यारा

कैसा दुस्साहस कर बैठा!

सुभद्रा- मि. सूर्य साधुओं को सदैव ही आदर देते थे। उनके लिये रोक ठीक भी नहीं थी।

सोहनजी- तभी साधु के परिधान ने जहाँ एक ओर उसे मि. सूर्य के पास सरलता से पहुँचाया, वहीं दूसरी ओर उसके घृणित इरादे को भी छिपा लिया।

डॉ. लाल- कहिये सोहनजी! इस रहस्य की कोई जानकारी हुई आपको।

सोहन जी - पता लगाने में ही तो देर हो गई।

डॉ. लाल- मैं आपकी ही राह देख रहा था। आप ठहरे पत्रकार। आपके सभी मार्ग खुले हैं जबकि मेरा आना-जाना संदिग्ध हो उठेगा। हो सकता है शत्रु की हमारे कार्यों पर दृष्टि हो ?

सोहन जी- इसमें क्या शंका है ? मि. सूर्य के सभी मित्रों, परिचितों पर कड़ी निगाह है। मैं रिपोर्ट के बहाने यहाँ आया हूँ। दो बातें ध्यान देने योग्य है एवं तत्क्षण कार्यवाही आवश्यक है।

सुभद्रा- कहिये।

सोहन जी - हत्यारे साधूराम को सार्वजनिक अस्पताल से दूर मानसिक चिकित्सालय में ले जाया गया है।

किये कराये पर पानी फिर जायेगा। हमें उनके अधूरे सपने पूरे करने हैं।

सुभद्रा- मुझे किसी बात में रुचि नहीं रही डॉक्टर! मैं क्या कर सकती हूँ।

डॉ. लाल- अपने लिये नहीं तो जनता के लिये आपको जीवित रहना होगा। मैं हत्या का सुराख लगा रहा हूँ, इसीलिये मैं यहाँ से तुरन्त चला गया था। मेरा जाना सार्थक हुआ।

सुभद्रा- मतलब ?

डॉ. लाल- कुछ तथ्यों की जानकारी मिली है। प्रसिद्ध पत्रकार मि. सोहन यहाँ पहुँचना ही चाहते हैं। उनसे भी कुछ प्रकाश पड़ेगा।

सुभद्रा- आपकी उनसे भेंट हुई ?

डॉ. लाल- हाँ! अभी फोन पर उन्होंने कहा कि वहीं आ रहा हूँ। चूँकि फोन पर ऐसी वार्ता खतरे से खाली नहीं हैं, अस्तु आपके ही बंगले पर चर्चा करना निश्चित किया है।

सुभद्रा- मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

(पत्रकार सोहन जी का प्रवेश)

सोहनजी- (प्रवेश कर) बड़ा बुरा हुआ मैडम! हमारी आप के साथ पूरी सहानुभूति है। इतने अंग- रक्षकों के होते हुये हत्यारा

कैसा दुस्साहस कर बैठा!

सुभद्रा- मि. सूर्य साधुओं को सदैव ही आदर देते थे। उनके लिये रोक ठीक भी नहीं थी।

सोहनजी- तभी साधु के परिधान ने जहाँ एक ओर उसे मि. सूर्य के पास सरलता से पहुँचाया, वहीं दूसरी ओर उसके घृणित इरादे को भी छिपा लिया।

डॉ. लाल- कहिये सोहनजी! इस रहस्य की कोई जानकारी हुई आपको।

सोहन जी - पता लगाने में ही तो देर हो गई।

डॉ. लाल- मैं आपकी ही राह देख रहा था। आप ठहरे पत्रकार । आपके सभी मार्ग खुले हैं जबकि मेरा आना-जाना संदिग्ध हो उठेगा। हो सकता है शत्रु की हमारे कार्यों पर दृष्टि हो ?

सोहन जी- इसमें क्या शंका है ? मि. सूर्य के सभी मित्रों, परिचितों पर कड़ी निगाह है। मैं रिपोर्ट के बहाने यहाँ आया हूँ। दो बातें ध्यान देने योग्य है एवं तत्क्षण कार्यवाही आवश्यक है।

सुभद्रा- कहिये।

सोहन जी - हत्यारे साधूराम को सार्वजनिक अस्पताल से दूर मानसिक चिकित्सालय में ले जाया गया है।

मानसिक चिकित्सालय में ? भला ऐसा क्यों ?

सुभद्रा- कुछ समझ में नहीं आया। दूसरी बात यह कि

सोहन जी- शासकीय विज्ञप्ति प्रसारित की जा रही है कि 'एक असंतुलित व्यक्ति ने राज प्रमुख मि. सूर्य की हत्या कर दी है। वह पकड़ा जा चुका है। जनता शांत रहे।'

डॉ. लाल- (तपाक से) पूरा रहस्य समझ में आ गया। विक्षिप्त घोषित कर मेन्टल हॉस्पीटल में साधूराम को इसलिये रखा गया है कि उससे किसी का सम्पर्क न हो सके।

सोहन जी - (उछल कर) ठीक यही बात है। दोनों खबरों की जड़ एक ही है।

डॉ. लाल- परन्तु ये कार्य है किसका? जरूर कोई महत्वाकाँक्षी व्यक्ति है।

सोहन जी - इस सन्दर्भ में मुझे एक बात स्मरण आ रही है। लगभग एक माह पूर्व मैं अपने पत्र के इन्टरव्यू के लिये श्रीमती अलकाजी के यहाँ गया था। अचानक वहाँ एक ज्योतिषी आये और आते ही बोले 'इस देश की बागडोर अब विधवा महिला सम्हालेगी, भाग्यवश आप ही वह महिला हैं।'

डॉ. लाल- तब निश्चित ही यह उसी का कार्य है। राज्य मन्त्री होते हुए भी उसका शासन में अच्छा प्रभाव है।

सोहन जी - कठोरता में तो उसने पुरुषों को भी मात कर दिया है। यह षड्यंत्र उसी भविष्यवाणी के फल स्वरूप ही किया गया है क्योंकि सुनते ही अलकाज़ी के मुँह पर एक कुटिल मुस्कान खेल गयी थी।

डॉ. लाल- और हाँ अलका विधवा भी है। यह उसी का कृत्य है।

सोहन जी - डॉक्टर! मुझे तो जो उसकी मोटी बुद्धि पर तरस आता हैं। उसने यह न सोचा कि मि. सूर्य की हत्या कर वह अपने समकक्ष एक और महिला को विधवा कर अपने हाथों अपना प्रतिस्पर्धी बना रही है।

डॉ. लाल- बुरा हो स्वार्थ का। यह मनुष्य की विचार शक्ति को कुंठित कर अन्धा बना देता है।

सुभद्रा- आह! वही प्रधान बन जाती। मेरे पति की हत्या तो न करवाती।

डॉ. लाल- नेता का लोकप्रिय होना अत्यन्त आवश्यक है, वही सफल हो सकता है। अलका में इस गुण का नितांत अभाव है।

सोहन जी- मैं तो कहता हूँ कि अलका जी मुख्य तो क्या राज्यमन्त्री भी नहीं रह पायेगीं।

डॉ. लाल- कुछ भी हो पर यह मानना पड़ेगा कि सेना के अधिकारी उसे बहुत मानते हैं।

सोहन जी - उन्हीं के बल पर तो वह पद पर प्रतिष्ठित है।

सुभद्रा- उसकी पद लिप्सा ने मेरे जीवन को ऊजड़ बना दिया डॉक्टर! मृदुल स्वभाव नारी की इतनी घृणित मनोवृत्ति हो सकती है?

डॉ. लाल- सब कुछ सम्भव है मिसेज सूर्य!

सोहन जी- डॉक्टर शीघ्र आगे की रूपरेखा बनाइये। विलम्ब घातक होगा।

डॉ. लाल- (विचारने की मुद्रा में) सोहन जी मेरे ख्याल से मिस्टर जयप्रकाशजी से मिलना चाहिए। वे हमारे कार्य में पूर्ण रूप से सहायक सिद्ध होगें। (सोहन जी फोन कर दें। इसकी उन पर क्या प्रतिक्रिया हुई है यह भी मालूम हो जायेगा। फोन करने अन्दर जाते हैं)

सुभद्रा- आप सब व्यर्थ परेशान न हों, डॉक्टर हमारे लाख प्रयत्न पर भी जिन्दगी वापस नहीं लौटा सकते।

डॉ. लाल- यहीं मानव असमर्थ है बहिनजी! परन्तु भविष्य विचार तो करना होगा।

सोहनजी- जयप्रकाश जी अभी आ रहे हैं।

डॉ. लाल- कौन मिला था?

सोहनजी- पत्नी कहने लगी कि इस समाचार से वे अत्यधिक परेशान हैं। अभी-अभी उनकी आँख झपकी है। मैं उन्हें जगाना नहीं चाहती। जब मैंने उनकी उपस्थिति अनिवार्य बतलाई तो उन्होंने भेजना स्वीकार कर लिया।

डॉ. लाल- मेरी योजना यह है कि मिस्टर जयप्रकाश भूत पूर्व गृहमंत्री हैं। उनके स्वभाव के कारण कुछ पुलिस अधिकारी अभी भी आदर देते हैं। हमें उनके साथ हॉस्पीटल चलना होगा ताकि हत्यारे की स्थिति देखकर कुछ सुराख लग सके।

(मिस्टर जयप्रकाश का प्रवेश)

डॉ. लाल- आपका ही इन्तजार था।

जयप्रकाश - कहिए मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ। (सुभद्रा से) भाभी जी! मेरी समस्त संवेदनाएँ आपके साथ हैं। मेरे परम मित्र की हत्या क्या हुई, मेरा दाहिना हाथ ही टूट गया 'यह पूर्व नियोजित गहरा षड्यंत्र है' जिसकी जड़ें दूर-दूर तक फैली होंगी। हत्यारे का उद्देश्य समझ में नहीं आया, उनको मारने से क्या

लाभ होगा ?

सोहन जी- उद्देश्य गद्दी हथियाना है और षड्यंत्रकारियों के शिकार अब श्रीमती सूर्य और आप हैं, मेरा चौथा नम्बर आता है।

जयप्रकाश - यह कैसे मालूम हुआ ?

डॉ. लाल- अत्यन्त विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ है। राजमंत्री अलका का यह कृत्य है, विलम्ब न करें। एक-एक क्षण बहुमूल्य है।

सोहन जी- साधूराम मर गया तो रहस्य, रहस्य ही बनकर रह जायगा।

जयप्रकाश- आपकी क्या योजना है ?

डॉ. लाल- साधूराम से मिलना है।

जयप्रकाश- हॉस्पिटल चला जाये।

डॉ. लाल- किन्तु उसे मेन्टल हॉस्पिटल में रखा गया है।

जयप्रकाश- (आश्चर्य से) मेन्टल हॉस्पिटल में।

डॉ. लाल- षड्यंत्रकारी इतने भोले नहीं हैं कि ऐसे खतरनाक आदमी को यहाँ शहर में रखते।

सोहन जी - सच पूछो तो इसी खबर ने मुझे चौंका दिया। मेरा माथा ठनका, तभी से भाग दौड़ में लगा हूँ।

डॉ. लाल- प्रकाश जी! आप अपने से प्रभावित पुलिस अधिकारियों से सहायता लें, तभी काम बन

सोहन जी- हाँ ! जिन पर आपको पूर्ण विश्वास हो।

जयप्रकाश - डॉक्टर, मेरा विभाग दूसरा है, इसीलिये मैं अपनी असमर्थता पर आँसू बहा रहा हूँ।

सोहन जी- पूरा-पूरा पता है। परिस्थितियों के बदलने पर भी कुछ प्रमुख अधिकारी, जो आपके मित्र या प्रभाव में हैं और जिनसे मिस्टर सूर्य के भी संबंध अच्छे रहे हैं, वे अवश्य सहयोग देंगे।

जयप्रकाश- चलिये, साथ में मिस्टर अतुल कुमार को ले लें। उनसे अच्छा सहयोगी और प्रभावशाली दूसरा नहीं मिलेगा। लॉरी की लॉरी पुलिस की साथ रहेगी। वहाँ अकेले जाना खतरे से खाली नहीं है।

डॉ. लाल- चलें। (सब खड़े हो जाते है) अच्छा मिसेज सूर्य। योजनानुसार कार्य कर हम शीघ्र लौटेंगे। ईश्वर हमारे कार्य को सफल बनायेगा।

जयप्रकाश- भाभीजी! इस कठिन समय में धैर्य के अतिरिक्त हमारा कोई सहारा नहीं है। हम लोग चलते हैं, आज्ञा दें।

(सुभद्रा की आँखों से आँसू बहने लगते हैं। वे मौन स्वीकृति देती हैं। सब भारी मन लिये प्रस्थान कर जाते हैं)

(पटाक्षेप)

दृश्य-द्वितीय

समय–अर्धरात्रि

स्थान–मानसिक चिकित्सालय

(मानसिक चिकित्सालय का एक पृथक कक्ष। साधूराम पलंग पर खड़ा है। उसकी जाँघ से रक्त बह रहा है। वह अर्द्धमूर्छित अवस्था में कराह रहा है। अस्पताल को चारों ओर से घेर लिया जाता है और पुलिस मैन भीतर यत्र-तत्र बिखरकर डॉक्टर, नर्सों पर कड़ी निगरानी रखते हैं। मिस्टर जयप्रकाश, डॉ. लाल, पत्रकार सोहनजी, पुलिस अफसर मिस्टर अतुलकुमार, विश्वस्त सर्जन, सहायक परिचारिकायें प्रवेश करते हैं। अस्पताल की परिचारिकायें, अधिकारी वर्ग घबरा जाते हैं)

अतुलकुमार– (साथ आये अधिकारियों में एक से) मिस्टर सुभानु! आवागमन प्रतिबंधित कर दो।

सुभानु– यस सर! (बाहर जाकर पुनः लौट आते हैं)

अतुलकुमार– डॉ. लाल! आप डॉक्टर नाग के साथ अभियुक्त का परीक्षण कर लें।

डॉ. लाल– (अभियुक्त की ओर देखकर) इसकी कोई परिचर्या नहीं हुई। रक्त अभी भी बह रहा है। मालूम होता है गोली भी नहीं निकाली गई।

सोहन जी– प्राण लेने की इससे अच्छी व्यवस्था और क्या हो सकती है।

(डॉ., परिचारिकायें कार्य में जुट जाते हैं)

डॉ. नाग – रक्त बहुत बह चुका है। रक्त देना होगा।

(साधूराम को रक्त दिया जाने लगता है। इन्जेक्शन भी लगाया जाता है। वह अर्धमूर्छित अवस्था में कुछ बोल रहा है। शब्द अस्पष्ट हैं। जयप्रकाश व अतुलकुमार कान लगाकर सुनने की चेष्टा करते हैं। वे सोहनजी को बताते हैं। बारी-बारी से दोनों सुनते हैं एवं पत्रकार सोहनजी नोट करते हैं)

अतुलकुमार– (सुनकर) सोहन जी! लिखिए, मेरा परिवार सुखी; एक लाख रुपया स्वामिनी! मुझे बचालो।

(अतुलकुमार पुनः सुनने लगते हैं, जयप्रकाश सुना हुआ बताते हैं)

जयप्रकाश– साधूराम अपने गुरु को सम्बोधन कर रहा है। गुरुदेव! आपके आदेशानुसार कार्य पूरा कर रुपया नहीं मिला। गुरुदेव! रुपया।

अतुलकुमार– सोहन जी! ज्यों का त्यों नोट करें।

सोहन जी– आप निश्चिंत रहें। बिल्कुल वैसा ही नोट होगा।

अतुलकुमार– पुलिस मेरे पीछे लगी है। मैं बेमौत.... रुपयों का सुख मुझे नहीं।

(डॉ. नाग गोली निकालते हैं। साधूराम कराहते हुये जोर से चिल्ला उठता है)

साधूराम– वह देखो पुलिस आ गई, गुरु बचाओ स्वामिनी मरा..........

अतुलकुमार– केस समझ में आ गया। हत्या के लिये रुपयों का प्रलोभन दिया गया है। इस षड्यंत्र में बहुलों का हाथ है। शीघ्र करो मिस्टर सिंह राज्यमंत्री अलकाजी का आवास घेर लो।

मि. सिंह– यस सर !

अतुलकुमार– और देखो बड़े मन्दिर के पुजारी को गिरफ्तार करो, वही इस साधूराम का गुरु है। इस केस में वह सहायक सिद्ध होगा। उसका भी इसमें हाथ है।

साधूराम– (कुछ होश में आकर चारों तरफ देखता है) मैं कहा हूँ ?

जयप्रकाश – घबराओ नहीं, तुम सुरक्षित हो।

सोहन जी– शाबाश ! साधूराम शाबाश ! तुमने मिस्टर सूर्य की हत्या कर बड़ा अच्छा कार्य किया है। तुम बड़े साहसी हो।

(साधूराम मुस्कराने की चेष्टा करता है परन्तु फिर दर्द के कारण कराहने की ध्वनि होती है)

सोहन जी– साधूराम ! हम तुम्हारा इन्टरव्यू लेने आये हैं। तुमने हमारे शत्रु को समाप्त कर अपनी स्वामिनी की जो अकथ सेवा की है वह प्रशंसनीय है। उनका कहना है कि वे कुर्सी पर

बैठते ही सार्वजनिक रूप से तुम्हारा अभिनन्दन करेंगी।

साधूराम– (हर्ष से) सच !

जयप्रकाश – हाँ, अब तो अपना राज है।

साधूराम– मुझे बचा लेना।

सोहन जी– तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ सकता। अब तुम इस हत्या का पूरा विवरण दो ताकि हम तुम्हारे साहस, निर्भयता की कहानी जन-जन में पहुँचा सकें। तुम्हारा चित्र भी प्रकाशित करेंगे।

साधूराम– बड़ा काम किया है मैंने ?

सोहन जी– हाँ बहुत बड़ा ! हाँ तो तुम घर से चले तो सीधे कहाँ गये ?

साधूराम– सूर्य के ....

सोहन जी– सूर्य के बंगले पर (साधुराम स्वीकारात्मक सिर हिलाता है) तुम्हारे साथ और कौन था ?

साधूराम– मेरी मदद को स्वामिनी ने पुलिस अफसर को भेजा था।

सोहन जी– तुम तो साधु हो न ? फिर ये काम कैसे किया ?

साधूराम– गुरुजी की आज्ञा।

सोहन जी– गुरु ने आज्ञा दी (साधुराम सिर हिलाता है) वाह तब तो तुम गुरुभक्त भी हो।

साधूराम- (आँखें बन्दकर) कष्ट बहुत है।

सोहन जी- उपचार हो रहा है। धीरे-धीरे ठीक हो जायेगा। हाँ यह तो बताओ साधूराम!

(साधूराम का सिर एक ओर लटकता-सा प्रतीत होता है, वह पुनः मूर्छित हो जाता है। डॉ. नाग उसे देखते हैं, तत्क्षण इन्जेक्शन लगाते हैं)

डॉ. लाल- इसे एम्बुलेंस में लेकर चला जाए। हालत बिगड़ रही है।

अतुलकुमार- हाँ! आप चलने की तैयारी करें।

(डॉ., परिचारिकायें साधूराम की ड्रेसिंग कर ले जाते हैं)

अतुलकुमार- कमाल है सोहन जी! आपने कैसी युक्ति से सारी जानकारी ले ली।

जयप्रकाश- अपनापन बताने पर सहज ही सारी बातें मालूम हो गईं। अब यही जानकारी आपके केस में साक्षी देगी।

डॉ. लाल- और ये सब बातें जब विरोधियों को ज्ञात होंगी तब उसके कलेजों पर साँप लोट जायेंगे।

सोहन जी- क्यों नहीं! बेचारों की आशा पर पानी फिर गया।

जयप्रकाश- बेचारों का कार्यक्रम अधूरा ही रह गया। मिसेज सूर्य, मेरी और सोहन जी की हत्या अभी शेष है।

अतुलकुमार- वह अब शेष ही रहेगी। उनकी दुर्भावनायें

कभी पूर्ण न हो सकेंगी।

सोहन जी- आपकी सतर्कता ही हमारी ढाल बनेगी। आप की ही तत्परता ने इस अभियान को सफल बनाया है।

डॉ. लाल- कभी अलका मिस्टर सूर्य की कितनी विश्वास पात्र थी और आज वही उनके प्राणों की ग्राहक बन बैठी।

जयप्रकाश- सच बात तो यह है कि मिस्टर सूर्य की सरलता उन्हें ले डूबी।

सोहन जी- अलका ऐसी दीखती तो नहीं थी। सदैव हँसमुख रहने वाली एक विधवा महिला इतनी नृशंसता पर उतर आयेगी, ऐसी कल्पना भी नहीं थी।

जयप्रकाश- यही तो धोखा हुआ है। शत्रु से बचाव करना सरल है परन्तु जब वह मित्र के वेश में आता है तो उसके प्रति विश्वास उसकी ओर की निश्चिन्तता शत्रु का मार्ग निष्कण्टक कर देता है।

अतुलकुमार- अजी हम लोंगो का पाला ऐसे क्रूर खूंखार अपराधियों से पड़ता है जिनकी सूरत बिलकुल भोली दिखाई देती है परन्तु हम भी अपराधी को पकड़ने के अभ्यस्त हैं।

(आँखें बन्दकर) कष्ट बहुत है।

साधूराम- उपचार हो रहा है। धीरे-धीरे ठीक हो जायेगा।

सोहन जी- हाँ यह तो बताओ साधूराम!

(साधूराम का सिर एक ओर लटकता-सा प्रतीत होता है, वह पुनः मूर्छित हो जाता है। डॉ. नाग उसे देखते हैं, तत्क्षण इन्जेक्शन लगाते हैं)

डॉ. लाल- इसे एम्बुलेंस में लेकर चला जाए। हालत बिगड़ रही है।

अतुलकुमार- हाँ! आप चलने की तैयारी करें।

(डॉ., परिचारिकायें साधूराम की ड्रेसिंग कर ले जाते हैं)

अतुलकुमार- कमाल है सोहन जी! आपने कैसी युक्ति से सारी जानकारी ले ली।

जयप्रकाश- अपनापन बताने पर सहज ही सारी बातें मालूम हो गईं। अब यही जानकारी आपके केस में साक्षी देगी।

डॉ. लाल- और ये सब बातें जब विरोधियों को ज्ञात होंगी तब उसके कलेजों पर साँप लोट जायेंगे।

सोहन जी- क्यों नहीं! बेचारों की आशा पर पानी फिर गया।

जयप्रकाश- बेचारों का कार्यक्रम अधूरा ही रह गया। मिसेज सूर्य, मेरी और सोहन जी की हत्या अभी शेष है।

अतुलकुमार- वह अब शेष ही रहेगी। उनकी दुर्भावनायें कभी पूर्ण न हो सकेंगी।

सोहन जी- आपकी सतर्कता ही हमारी ढाल बनेगी। आप की ही तत्परता ने इस अभियान को सफल बनाया है।

डॉ. लाल- कभी अलका मिस्टर सूर्य की कितनी विश्वास पात्र थी और आज वही उनके प्राणों की ग्राहक बन बैठी।

जयप्रकाश- सच बात तो यह है कि मिस्टर सूर्य की सरलता उन्हें ले डूबी।

सोहन जी- अलका ऐसी दीखती तो नहीं थी। सदैव हँसमुख रहने वाली एक विधवा महिला इतनी नृशंसता पर उतर आयेगी, ऐसी कल्पना भी नहीं थी।

जयप्रकाश - यही तो धोखा हुआ है। शत्रु से बचाव करना सरल है परन्तु जब वह मित्र के वेश में आता है तो उसके प्रति विश्वास उसकी ओर की निश्चिन्तता शत्रु का मार्ग निष्कण्टक कर देता है।

अतुलकुमार- अजी हम लोंगो का पाला ऐसे क्रूर खूंखार अपराधियों से पड़ता है जिनकी सूरत बिलकुल भोली दिखाई देती है परन्तु हम भी अपराधी को पकड़ने के अभ्यस्त हैं।

जयप्रकाश- यह तो मानना पड़ेगा कि पिटा व्यक्ति अपनी भावनाओं पर जितना कन्ट्रोल कर लेता है, उतना योगियों तक के लिए कठिन है। उसका मन रोता है जो होठ हँसते है मन में भले ही हर्ष की तरंगे उछलती हों, पर आँखे रो सकती हैं। ईर्ष्या का विषैला उद्वेग दबाकर वचनों से वातावरण में मिश्री-सी घोल देता है।

(परिचारिकायें साधूराम को बाहर ले जाती हैं)

सोहन जी- पौ फट रही है। दिन निकलने के पूर्व हमें हॉस्पीटल छोड़ देना चाहिए।

डॉ. लाल- चलें! शीघ्र मिसेज सूर्य को इस वृत्तान्त से अवगत करा दें।

जयप्रकाश- दाह संस्कार करना है। बेचारी भाभी ऐसे विषम दुःख में अकेली हैं।

अतुलकुमार- चलें।

(सबका प्रस्थान)